सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : [illegible] द्विवार्षिक : 360

प्रकाशन तिथि : 01.10.2017

वर्ष : 50; अंक : 7
अक्टूबर 2017

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

संकल्प बल

श्री देवकीनन्दन विभव

हट जाओ पर्वत मेरे मार्ग से !
माना तुम महान हो पर मेरा संकल्प तुमसे भी महान है।
तुम जितने कठोर हो, मेरा धैर्य उतना ही प्रबल है।
तुम जितने अगम्य हो, मेरा साहस उतना ही तीक्ष्ण है।
तुम जितने अटल हो, मेरा उत्साह उतना ही अचल है
नहीं पर्वत तुम अपने वक्षःस्थल से मेरे मार्ग को नहीं रोक सकते
जीवन की असंख्य घड़ियाँ मैं तुम्हें खोद डालने में नष्ट कर दूंगा
मैं स्वयं एक एक पत्थर चुन कर तुम्हें उखाड़ फेंकूँगा
मैं अपने अदम्य साहस से तुम्हारा ऊँचा मस्तक झुका दूँगा
नहीं पर्वत तुम अपने वक्ष स्थल से मेरे मार्ग को नहीं रोक सकते
यौवन के मदमाते झोंके आयँगे और चले जायगे
यश और वैभव का ज्वार उठेगा और शान्त हो जायगा
पर मैं अपने कार्य में अविछिन्नि जुटा रहूँगा
नहीं पर्वत शिखर ! तुम अपने वक्ष स्थल से मेरे मार्ग को नहीं रोक सकते!

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 50
अंक : 7

अक्टूबर
2017

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

विश्वे देवा अभिरक्षन्तु

महां यजन्तां ममयानीष्टाकूतिः
सत्था मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु।।

(अथर्ववेद)

मेरे प्राप्त करने योग्य इष्ट–कर्म ही मुझको प्राप्त हों, मेरे मन में सत्य–संकल्प ही हों, मैं कभी भी कोई पाप कर्म न करूँ, सब उत्तमपुण और शुभ कर्म करूँ, ईश्वर मेरी रक्षा करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ....

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 6
3. श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ.विजय सिंह 10
4. काश! मुझे होश न आता – जगदीश राय बंसल 13
5. ज्ञानोत्तर जीवन–निर्वाह – श्री चिदानन्द सरस्वती महाराज 16
6. चित्त–शुद्धि – श्री एन. व्यास 18
7. गोरक्षपीठ में सिद्ध गुफा संवाई आश्रम का प्रतिनिधित्व – अनिल दुबे 21
8. छात्र जीवन में योग की उपयोगिता – राजेश कुमार सिंह 23
9. चित्त शुद्धि के उपाय – जनक कुलश्रेष्ठ 25
10. परमधाम के पथ प्रदर्शक गुरुदेव – रचना शर्मा 29
11. अवतारी महापुरुष या सत्ता की प्राप्ति – श्री जगदीश नारायण उपाध्याय 35

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

शक्ति प्राप्ति का साधन–धारणा

ब्रह्मलीन योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

धारणा–ध्यान और समाधि योग के अन्तरंग अंग हैं, धारणा के पश्चात् ही ध्यान की गहराई में उतरा जाता है और इस गहराई के बाद ही साधक समाधि के आनन्द को प्राप्त कर पाता है। इसलिए धारणा की शक्ति को जानना व समझ लेना प्रथम जरूरी होता है, गुरुवर समझा रहे हैं धारणा की इसी शक्ति और उसकी विधि को अपने इस लेख में। —सम्पादक

हमने कभी किसी लेख में यह भली प्रकार से समझा दिया है कि शक्ति–विहीन व्यक्ति कुछ भी नहीं है। हमारे शास्त्रों का भी कथन है:—

''नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो''

अर्थात् बलहीन मनुष्य को आत्म–पद की प्राप्ति स्वप्न में भी सम्भव नहीं हो पाती है। जो प्राणी शक्तिहीन है वह लोक–परलोक के सुख को किसी प्रकार कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका जीवन केवल इसी प्रकार है जिस प्रकार वर्षाकाल में अनेक प्रकार के कीट–पतंगें आदि जन्म लेकर मर जाया करते हैं। मनुष्य जबसे जन्म ग्रहण करता है तब से उसके मन में शक्ति–प्राप्ति की लालसा बराबर बनी रहती है। 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार साधना में भी मनुष्य अपनी मति के अनुसार ही प्रवृत्त होता है। वह जिस प्रकार की साधना करता है उसी प्रकार की शक्ति का अनुभव कर अपने आप को आह्लादित कर लेता है किन्तु उसको यह आह्लाद थोड़े समके लिये होता है। ठीक इस प्रकार जिस प्रकार, समुद्र की मछली को कहीं तपी हुई बालू में डाल दिया जाये तो वह बालू की गर्मी पाकर तड़प जाया करती है और यदि उसको कोई छोटा–सा भी जलाशय मिल जाये तो उसे पाकर शान्ति मिल जाती है। यद्यपि यह शान्ति भी उसके लिए अस्थायी रहती है जब तक कि वह अपने घर समुद्र को प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उसका दु:ख–दर्द किसी भी प्रकार से कम नहीं हो पाता।

ठीक इसी प्रकार यह जीवात्मा भी शक्ति के भण्डार परमात्मा का अंश है अतः जब तक

यह उन्हीं को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक छोटी–मोटी शक्तियों को पाकर इसको शान्ति उपलब्ध नहीं हो पाती। जिसको शान्ति ही नहीं मिलती उसको सुख भी कहीं नहीं मिलता। इसलिए योगियों ने अपने तप के आधार पर उच्चतम् शक्ति प्राप्त करने के उपायों का अन्वेषण किया है, जिनको अपनाकर वे कभी भी दीनता को प्राप्त नहीं हुए। हमारे शरीर में सभी प्रकार की शक्तियों की उत्पत्ति का केन्द्र मन है। मन को ज्योतियों की भी महाज्योति कहा गया है। वेदमन्त्रों में इसको शिव–संकल्प वाला भी कहा है।

वेद भगवान ने यह भी कहा है कि हमारो मन जागता हुआ जैसे दूर–दूर भ्रमण करता है उसी प्रकार सोता हुआ भी क्रियाशील बना रहता है। जिससे उसमें शुभ संकल्पों का वास हो ताकि यह हमारे उत्थान का कारण बने। पूर्वजों का कथन है कि–

मनएव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयो।

अर्थात् बन्ध और मुक्ति का कारण हमारा मन है इसलिए सर्वप्रथम मन की चंचलता को रोककर शक्ति संचय करने के लिए इसको संयम में ले आना बहुत ही आवश्यक रहता है। भगवान पतंजलिदेव ने 'योग–दर्शन' में जो भी योग का वर्णन किया है वह सभी यद्यपि मन पर कन्ट्रोल करने के लिए अचूक साधन हैं, किन्तु फिर भी सब प्रकार की साधना करते हुए अष्टांग योग में धारणा, ध्यान और समाधि का मनोनिग्रह करने के लिए तीन प्रमुख साधनों का उल्लेख किया गया है।

'जब तक मन किसी धारणा के द्वारा अंतर्मुख नहीं होता तब तक इसके अन्दर शक्तियों का उदय नहीं हो सकता। किसी महावृक्ष को छेदन करने के लिए पहले योग्य शस्त्र की जरूरत होती है जो उसे काट सके। इसी प्रकार परम श्रेय लाभ करने के लिए भी अपने अन्दर दिव्य शक्तियों को संग्रहीत करने के लिए प्रथम मन को वश में लाना बहुत आवश्यक रहता है। इसकी पहली साधना तीव्रतम धारणा से ही आरम्भ होती है।

धारणा

यह धारणा क्या है? इसके विषय में भगवान पतंजलिदेव ने अपने सूत्रों में इस प्रकार उल्लेख किया है :

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा

अर्थात् किसी लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना धारणा कहलाती है। यह धारणा ही योग का सर्व प्रथम सोपान है। यहीं से ही मनुष्य के मन का एकाग्र होना आरम्भ होता है। धारणा कहाँ करनी चाहिए इस विषय में शास्त्रों में कई मत हैं। श्री व्यासजी जो योग–दर्शन के प्रमुख भाष्यकार हैं धारणा के बारे में लिखते हैं :

नाभिचक्रे, हृदय पुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाऽग्रे, जिह्वाऽग्रे, इत्येवमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये, चित्तस्य वृत्ति मात्रेण वन्ध इति धारणा।

अर्थात् नाभिचक्र, हृदय कमल, मूर्ध्वा, ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वा अग्र इत्यादि स्थानों पर चित्त की वृत्ति को एकाग्र करना धारणा कहलाती है। वृत्ति मात्र कहने का अभिप्राय यह है कि इनका हम अपने मन में कल्पनात्मक रूप से चिन्तन करें, जिस प्रकार से आँख रूप को प्रत्यक्ष देख लेती है और मन उस रूप की भावना किया करता है। ऐसे ही देखे सुने हुए विषय का मन की भावना में चिन्तन करना ही वृत्ति–बन्ध कहा जाता है। इसका अभिप्राय इस प्रकार समझ लेना चाहिए, जैसे हम हृदय कमल में, भगवान् शिव के स्वरूप पर धारणा करना आरम्भ करें और कल्पना से उनके स्वरूप को हम हृदय में बैठा हुआ देखने लगें तो यही हृदय कमल की धारणा होगी।

बार–बार कल्पना से भगवान शिव, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीविष्णु या अन्य किसी भी इष्ट के स्वरूप का हृदय–कमल में चिन्तन करना हृत्पुण्डरीक में होने वाली धारणा है। इसी प्रकार से मूर्ध्वा ज्योति, नासिका अग्र, जिह्वाग्र, नाभिचक्र आदि में धारणा की जाती है। धारणा करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह फल की इच्छा को छोड़ करके कर्म में संलग्न रहे। भगवान् पतंजलिदेव का आदेश है:

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।

अर्थात् जिस भी अभ्यास को हम करना शुरू करें तो उसके परिणाम की शीघ्र प्रतीक्षा के बजाय वर्षों तक लगातार उसका करते रहना आवश्यक होगा। यह नहीं कि एक–दो दिन करके ही उसके परिणाम पर नजर डालने लगें। काफी लम्बे समय तक उस अभ्यास को करना चाहिए और लगातार करना चाहिए अर्थात् इस नियम में कोई अन्तराय नहीं आने पाये।

'धारणा' को परिपक्व करने के लिए हमें कम से कम तीन साल तक एक विषय पर ही मन लगाना होगा। तीन साल तक यदि मन्दाधिकारी भी उपरोक्त प्रकार के अनुसार धारणा का अभ्यास करेगा तो उसका मनोबल अवश्य ही बढ़ेगा। धारणा के अभ्यास से मन में विचार करने की उच्चस्तर की योग्यता प्रकट हो जाती है और वह एकाग्रता की ओर चलने लगता है।

धारणा सु योग्यता मनसः।

अर्थात् निरन्तर समय तक धारणा करने पर मन की योग्यता बढ़ती है। इसमें बल का विकास होता है और साधक सब कुछ कर पाने की ताकत वाला बन जाता है।

सम्पादकीय–

मानव जीवन में शिक्षा का महत्त्व

आचार्य (डा.) दासलाल जी महाराज

मानव जीवन में शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। शिक्षित व्यक्ति समाज में बड़े–बड़े काम कर सकता है। आज देश व प्रदेश की राजनीति में सुशिक्षित व्यक्ति शासन चला रहे हैं यह देश के लिए सौभाग्य की बात है। हमारे देश में प्राचीन काल में भी शिक्षा का बड़ा महत्त्व रहा है। अच्छे लोग अपने बच्चों को आदर्श गुरुकुलों में भेज कर उच्च शिक्षा दिलाया करते थे। छात्रों को वेद–वेदाङ्ग की शिक्षा दी जाती थी। वेदों के अंगों के समुचित ज्ञान के अभाव में शिक्षा उच्च कोटि की नहीं मानी जा सकती। वेदाङ्ग की पढ़ाई आवश्यक थी। वेद के छह अंग माने हैं। वे हैं–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

अब हम संक्षेप में इनकी व्याख्या करते हैं।

(1) शिक्षा–

यह वेद का प्रथम अंग है। **'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य'**अर्थात् वेद की नासिका शिक्षा है। जिस प्रकार से कोई व्यक्ति नासिका के बिना सुन्दर नहीं दिखाई पड़ता है ऐसे ही शिक्षा के बिना वेद का ज्ञान अधूरा होता है। शिक्षा के अन्तर्गत, वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम, संतान की शिक्षा दी जाती है। वर्ण ज्ञान के द्वारा वर्णों का ज्ञान होता है। इसके बाद स्वर ज्ञान उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, मात्रा में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत का, बल से मुख में उच्चारण का स्थान एवं प्रयत्न का, साम से निषाद आदि स्वर का। इस प्रकार से गुरु स्वयं उच्चारण करके इनका भेद बताते थे मन्त्रों में उच्चारण का विशेष महत्त्व रहता है। गुरु ही शिष्य को ठीक प्रकार से इन सबका ज्ञान अपने मुख से बोल कर कराया करते थे किसी समय में पढ़ने लिखने की व्यवस्था भी कम थी। गुरु उच्चारण करके ही शिष्यों को याद करवाया करते थे। इसलिए वेद का नाम 'अनुश्रव' भी है। शिक्षा वेद के अंग की पहली सीढ़ी है। आज शिक्षा का ही रूपान्तरण 'भाषा विज्ञान' है।

(2) कल्प–

वेद का दूसरा अंग कल्प है। 'हस्तौ कल्पोऽय उच्यते' कल्प को वेद के हाथ कहे गये हैं।

कल्प को हाथ की संज्ञा दी गई है। कल्प के अन्तर्गत सूत्र आते हैं यह तीन भागों में बाँटे गये हैं—श्रोत्र सूत्र, गृहसूत्र तथा धर्म सूत्र। इन सूत्रों के अनुसार ही कालान्तर में स्मृतियों की रचना हुई है। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, पाराशर स्मृति आदि बीसियों स्मृतियाँ बनी हैं। कल्प क्रियात्मक ज्ञान की शिक्षा देता है। यज्ञ–यागादि की व्यवस्था निर्धारण करता है।

(3) व्याकरण—

'व्याकरणम् मुखं स्मृतम्' वेद का मुख व्याकरण कहा गया है। व्याकरण से ही सभी शब्दों की व्युत्पत्ति, उच्चारण तथा प्रत्यय आदि के प्रयोग से शब्दों के निर्माण करके उसे 'पद' की संज्ञा प्रदान की जाती है। व्याकरण के सम्यक् ज्ञान के अभाव में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। एक पिता पुत्र से कहता है। वत्स! व्याकरण अवश्य पढ़ना ताकि स्वजन शब्द का श्वजन (कुत्ता) सकल का शक्ल तथा सकृद् (एकवार) का शकृद् (मल) न बोला जाये।

'स्वजनः श्वजनो का भूत सकलं शकलं सकृद् शकृद्'।

इसीलिए कहा जाता है कि **'एकः शब्दः सम्प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च काम धुग् भवति'** अर्थात् एक शब्द भी ठीक प्रकार से प्रयुक्त करके व्यवहार में लाया जाये तो इस लोक में और स्वर्गलोक में कामनाओं की पूर्ति करने वाला हो जाता है। अतः अच्छे शिक्षित विद्वान होने को व्याकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। व्याकरण भी लौकिक और वैदिक भेद से दो प्रकार का होता है।

(4) निरुक्त—

वेद का चौथा अंग निरक्त है। **'निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'** निरक्त को वेद पुरुष का श्रोत्र (कान) कहा गया है। जैसे कोई व्यक्ति कान के बिना सुनने में असमर्थ होता है ऐसे ही निरुक्त के बिना वेद का ज्ञान प्राप्त करना अधूरा है। निरुक्त एक प्रकार से वेदिक शब्दों की व्याख्या है। निरुक्त में भास्काचार्य का निघन्टु एक प्रकार से शब्दकोष की भाँति है। निरुक्त गद्य में होता है। ये मन्त्रों के आन्तरिक स्वरूप को प्रकट या उद्घाटित करता है। निरुक्त का अर्थ है व्युत्पत्ति। प्रत्येक शब्द किसी धातु में प्रत्यय आदि लगाने पर निष्पन्न होते हैं। इस प्रकार से निरुक्त और व्याकरण का अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध है। शास्त्री कक्षा में जो साहित्य पढ़ते हैं उन्हें निरुक्त का भी अध्ययन अवश्य ही करना होता है।

(5) छन्द—

वेद का पाँचवाँ अंग छन्द है। **'छन्दः पादौ तु वेदस्य'** छन्द वेद के पैर (पाद) कहे गये हैं। जिस प्रकार से लोक में 'मनुष्य बिना पैरों के चल नहीं सकता है उसी प्रकार से छन्द के

बिना वेद की कल्पना नहीं की जा सकती। छन्दों में ही मन्त्र निबद्ध होते हैं। ये गाने योग्य बन जाते हैं इनका गायन हो सकता है। छन्द कई प्रकार के होते हैं कोई भी मन्त्र छन्द के बिना नहीं होता है।

(6) ज्योतिष–

वेद का अन्तिम अंग है ज्योतिष–ज्योतिष को वेद का चक्षुः कहा गया है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति चक्षु के बिना देखने में असमर्थ होता है वैसे ही वेद में ज्योतिष को चक्षु की तरह माना है क्योंकि इससे ही ऋतु, संवत्सर काल, मुहूर्त का ज्ञान होता है। यज्ञादि कर्म में तो इसकी आवश्यकता सर्वाधिक है। ज्योतिष को **'काल विज्ञापक शास्त्र'** भी कहते हैं। ज्योतिष के अनुसार शुभ मुहूर्त में किये गये कार्य सफल व फलदायी होते हैं तथा अशुभ मुहूर्त में किये गये कार्य अशुभ फल देने वाले होते हैं। इस प्रकार से प्राचीन काल में वेद के इन छः अंगों की पढ़ाई के बाद ही आगे की शिक्षा प्रारम्भ की जाती थी। अस्तु! निश्चित पढ़ाई पूरी करके छात्र स्नातक हो जाता था यदि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता था तो गुरुकुल छोड़ते समय गुरु उसको उपदेश करता था। **सत्यं वद! धर्मं चर! स्वाध्यायाद् मा प्रमदिव्यम्।** अर्थात् हे सौम्य! तू धर्म का आचरण करना। सदा सत्य बोलना तथा स्वाध्याय (शास्त्राध्ययन व मन्त्र जप) में कभी प्रमाद या लापरवाही न करना। इस प्रकार उचित शिक्षा व उपदेश देकर गृहस्थ में प्रवेश कराते थे। आज 'दीक्षान्त समारोह' में इस प्रकार की कोई बात नहीं सिखाई जाती है। गुरुकुल में विद्यार्थी आसन, प्राणायाम करता था, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता था, योग साधन करता था, इस प्रकार वह 25 साल तक पूर्ण विद्वान, योगी एवं ब्रह्मवेत्ता हो जाता था। आज परिस्थिति बदल गई है। पढ़ाई लिखाई भी ढंग से नहीं हो रही है। हिन्दी या अंग्रेजी भाषा में विद्यार्थी ठीक से एक प्रार्थना पत्र भी नहीं लिख सकता है भले ही वह स्नातक हो गया हो। सदाचार एवं धर्म की बात तो सिखाना पाप जैसा समझा जाता है। धर्म निरपेक्ष जो ठहरे यहाँ धर्म की जरूरत ही नहीं है। जहाँ ऐसी पढ़ाई होती हो वहाँ ईश्वर प्रेम और राष्ट्र प्रेम का संस्कार बच्चों में कैसे आ सकता? छात्र पढ़कर नौकरी पा जाता है। मल्टीनेशनल कम्पनियों में काम करता है। पैसा कमाता है। किन्तु वह अवसाद ग्रस्त (Frustrated) रहता है। कोई–कोई तो आत्महत्या जैसी निन्दित कृत्य भी करते देखे गये हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए सच्चरित्रता, देश भक्ति, ईश्वर प्रेम तथा अन्त में मोक्ष का प्रयत्न। अर्थात् विद्यार्थी को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का लक्ष्य ज्ञात होना चाहिए। सुशिक्षित ही योग मार्ग पर सफल हो सकता है। एक अच्छा, और कुशल शासक हो सकता है। राष्ट्रप्रेमी व धर्म प्रेमी हो सकता है और

समाज के सर्वतोन्मुखी विकास में ऐसे योग्य व्यक्ति ही सफल हो सकते हैं और अपने अद्भुत देश सेवा, धर्म सेवा के कारण महापुरुष बनकर लोगों के मध्य आराध्य बन सकते हैं।

अतः शिक्षा का प्रयोजन मानव जीवन का समग्र विकास, मोक्ष की प्रवृत्ति एवं आत्मोत्थान रहना चाहिए। तभी सच्चे अर्थों में शिक्षा का महत्त्व साकार होकर पुष्पित व पल्लवित हो सकेगा। शिक्षित व्यक्ति ही योग में पूर्णता पा सकता है क्योंकि वह ही योग के वास्तविक स्वरूप, साधना विधि व लक्ष्य में समझ सकता है। आज शिक्षा व संस्कार की कमी से ही तथाकथित सन्त, सच्चे सन्तों को भी बदनाम कर रहे हैं। सच्चे सद्गुरु की सद्शिक्षा न मिलने के कारण ही ऐसे अधकचरे साधु समाज को दूषित करते हैं।

'मातृवान्, पितृवान, आचार्यवन्हि पुरुषो वेद'। माता से ठीक शिक्षा प्राप्त किया हुआ, पिता का सदुपदेश व संस्कार प्राप्त व्यक्ति तथा सद्गुरु की शरण पाया व्यक्ति ही परमात्मा के मार्ग को पा सकता है। परमात्मा को पा सकता है।

जीवन की परिमितता

चित्त की एकाग्रता में सहायक दूसरी बात है–जीवन की परिमितता। हमारा सब काम नपा–तुला होना चाहिए। गणित–शास्त्र का यह रहस्य हमारी सब क्रियाओं में आ जाना चाहिए। औषधि जैसे नाप–तौलकर ली जाती है, वैसे ही आहार–निद्रा भी नपी–तुली होनी चाहिए। सब जह नाप–तौल चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय पर पहरा बैठाना चाहिए। मैं ज्यादा तो नहीं खाता, अधिक तो नहीं सोता, जरूरत से ज्यादा तो नहीं देखता–इस प्रकार सतत् बारीकी से जाँच करते रहना चाहिए। ऐसा अभ्यास होने पर सफलता निश्चित मिल जाती है।

–आचार्य विनोबा

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

नवमें स्कन्ध के दसवें अध्याय में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चरित्र का वर्णन संक्षेप में परन्तु सारग्राही रूप में किया गया है।

खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घवाहु और दीर्घवाहु के परम यशस्वी पुत्र रघु हुये। रघु के अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। पृथ्वी का भार उतारने हेतु देवताओं के प्रार्थना पर साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा अपने अंशांश से चार रूप धारण करके दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हैं–

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
राम लक्ष्मणभरतशुत्रुघ्ना इति संज्ञया।।2।।

श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं–राजन! भगवान राम का चरित्र तत्वदर्शी ऋषियों ने बहुत कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार सुना भी है। श्री राम ने अपने पिता राजा दशरथ के सत्य की रक्षा हेतु राज–पाट छोड़ दिया और वन–वन में जानकी तथा लक्ष्मण के साथ फिरते रहे। सुर्पणखा के कुकृत्य के कारण उसे विरूप करने के कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्री जानकी जी का वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोग के कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं जिसको देखकर समुद्र तक भयभीत हो गया। इसके बाद समुद्र पर पुल बाँधा और लंका में जाकर दुष्ट राक्षसों सहित रावण का वध कर सीता जी को पुनः प्राप्त किया। श्री राम ने किशोरावस्था में ही विश्वामित्र के यज्ञ में लक्ष्मण के सामने ही मारीच आदि राक्षसों को मार डाला। सीता जी के स्वयंवर में शंकर जी के भयंकर धनुष को जिसे तीन सौ मल्ल मुश्किल से उठाकर लाये थे, जिसे संसार के बड़े–बड़े वीर उठाना तो दूर अकेले हिला भी नहीं सके। उस धनुष को श्री राम ने बात–की–बात में उठाकर उस पर डोरी चढ़ा दी और गन्ने की तरह उसे तोड़ डाला था।

विवाह कर अयोध्या लौटते समय मार्ग में उन परशुराम जी से भेंट हुई, जिन्होंने पृथ्वी से क्षत्रियों के नामों निशान मिटा दिये थे। भगवान श्री राम ने उनके बढ़े हुए गर्व को नष्ट कर

दिया। माता कैकेयी को पिता द्वारा दिये वरदान को सत्य करने हेतु श्री राम ने वनवास स्वीकार किया। रावण की बहन सूर्पणखा का नाक कान काट कर विरूप कर दिया। पक्षपाती खर दूषण सहित चौदह हजार राक्षसों का एकाकी राम ने वध कर डाला। माया मृग बना मारीच छल करता हुआ जब राम को घोर वन में ले गया वहाँ श्री राम ने बात–की–बात में मार डाला। जिस समय लक्ष्मण सीता जी के निर्देश पर राम जी को खोजने गये उस समय छल पूर्वक रावण श्री सीता जी को हर लिया। तदन्तर भाई लक्ष्मण के साथ सीता जी को खोजते हुए दीन की भाँति वन–वन में भटकते रहे। जटायु को सद्‌गति देकर, कबन्ध का वध किया और अन्त में सुग्रीव आदि वानरों से मित्रता कर बालि वध किया। वे पुनः बन्दरों की सेना के साथ समुद्र तट पर पहुँचे। समुद्र से रास्ता पाने हेतु विफल उपासना होने पर क्रोध से उग्र नजर डालते ही शरीर धारण कर समुद्र प्रकट हो गया और उसने प्रार्थना करते हुए कहा–वीर शिरोमणे! मुझ पर एक पुल बाँध दीजिये। श्रीराम ने बन्दरों की सहायता से पुल बाँधकर वीर हनुमान, सुग्रीव आदि के साथ अपनी सेना लेकर लंका में प्रवेश किये जो श्री हनुमान जी के द्वारा पहले ही जलायी जा चुकी थी। घनघोर युद्ध में रावण के सभी प्रमुख एवं अप्रमुख वीर राक्षस मारे गये।

जब रावण ने देखा कि मेरी सेना का तो नाश हुआ जा रहा है, तब वह पुष्पक विमान में बैठकर श्रीराम जी के सामने आया। इसी समय इन्द्र सारथी माविक बड़ा दिव्य तेजस्वी रथ लेकर आया जिस पर चढ़कर श्री राम जी ने रावण से भयंकर युद्ध किया। अन्ततोगत्वा श्री राम द्वारा रावण का वध हुआ। लंका का राज्य विभीषण को सौंप, विरहाकुल अपनी प्रियतमा सीता जी को साथ ले भाई लक्ष्मण, हनुमान आदि मुख्य पार्षदों के साथ विमान द्वारा अयोध्या पहुँचे।

इधर भरत जी वल्कल वस्त्र धारण किये जटा–जूट मंडित, मात्र गोमूत्र में पकाये जौ का भोजन करते हुए सर्वदा रामाश्रय होकर अयोध्या का राज–काज देख रहे थे। भगवान श्रीराम के दर्शन पाते ही दण्ड समान चरणों में प्रेमादेक से भरकर गिर पड़े। भगवान ने भरत जी को उठाकर बड़ी देर तक अपने हृदय से लगाये रखा। गुरु वसिष्ठ जी, माताओं एवं गुरुजनों की अभ्यर्थना श्री राम जी ने किया। इस प्रकार श्री राम राजा हुये। इन्द्रियातीत भगवान श्री राम के राज्य करते समय किसी को मानसिक चिन्ता अथवा शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय और थकावट नाम मात्र के लिए भी नहीं थे। यहाँ तक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी–

नाधि व्याधिजराग्लानि दुःख शोक भयक्लमाः।

मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे।

(अ.11 स्क.9)

जन साधारण के लिए श्री राम जी का चरित्र जहाँ सर्वथा अनुकरणीय है वहीं सिद्धों के लिए श्री राम एक आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषों के शिरोमणि हैं। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सभी को दो–दो पुत्र हुए। राम के पुत्र कुश के वंश परम्परा में वज्रनाभ हुआ जो सूर्य का अंश था। वज्रनाभ से खगण, खगण से विधृति और विधृति से हिरण्यनाभ पैदा हुये जो जैमिनी ऋषि के शिष्य और योगाचार्य थे।

खगणस्तत्सुतस्तस्माद विधृतिश्चाभवत् सुतः।
ततो हिरण्यनाभोऽभूद् योगाचार्यस्तु जैमिनेः।।3।।

(अ.12 स्क.9)

हिरण्यनाभ से कोसल देशवासी याज्ञ्यवल्क ऋषि ने शिष्यता ग्रहण कर आध्यात्म योग की शिक्षा ग्रहण किया था, वह योग हृदय की गाँठ (जड़–चेतन) काटने वाला तथा परम सिद्धि देने वाला है।

शिष्यः कौसल्यआध्यात्मं याज्ञवल्कयोऽध्यगाद् यतः।
योगं महोदयमृषिर्हृदय ग्रन्थि भेदकम् ।।4।।

(अ.12 स्क.9)

हिरण्यनाभ का पुष्य, पुष्य का ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि का सुदर्शन, सुदर्शन का अग्निवर्ण का पौत्र हुआ मरु। मरु ने योगसाधना से सिद्धि प्राप्त कर ली और वह आज भी कलाप नामक ग्राम में रहता है। कलियुग के अन्त में सूर्यवंश के नष्ट हो जाने पर वह उसे फिर चलायेगाः–

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलाप ग्राम भाश्रितः।
कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः।।6।।

(अ.12 स्क.9)

इक्ष्वाक का यह वंश परम्परा का अन्तिम राजा सुमित्र होगा। कलियुग में सुमित्र के राजा होने पर यह वंश समाप्त हो जायेगा।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

काश! मुझे होश न आता

—जगदीश राय बंसल ''अधम'' नई दिल्ली

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले हृदय सम्राट सिद्ध योगाधिपति मेरे सद्गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने लाड़ले बच्चों पर हर तरह से समय समय पर अपनी कृपाऐं बरसाते रहते हैं। जिस प्रकार अपने स्थूल शरीर के रहते कृपाऐं होती रही हैं, उसी प्रकार उनके लीला अवसान के पश्चात् भी हो रही हैं। ये कृपाऐं चाहे अग्नि की लपटों से बचाने की हों या गहरे जल श्रोत में डूबने से बचाने की हों या उग्रवाद के चंगुल से छुड़ाने की हों या सरपट दौड़ रही रेलगाड़ी के पहिए से बचाने की हों अथवा भयंकर दुर्घटना से प्राण रक्षा करने की हों। अथवा अस्पताल में मृत्यु से जूझ रहे बीमार के प्राण बचाने की हों......इत्यादि। इतना ही नहीं हमारे गुरु देव की कृपाऐं इतनी विशाल हैं कि हमारी बुद्धि में ही नहीं आती। जितनी बुद्धि में आती हैं, उतनी मन में नहीं आती, जितनी मन में आती हैं, उतनी कहने में नहीं आती और जितनी कहने में आती हैं, उतनी लिखने में नहीं आती। यह बात अलग है कि सर्वसमर्थ जी जिस अलबेले लल्ला पर रीझ जाए उसको सब भेद जना देते हैं। इस बात को भक्त शिरोमणी बाबा तुलसी दास जी भी कहते हैं कि:—

सोई जानहिं जेहि देहूं जनाई।
जानत तुम्हीं तुम्हही होई जाई।।

इसी प्रकार का एक दुर्घटना प्रसंग 48 वर्षीय आदरणीय गुरु भाई गोपाल ने दिल्ली अनुष्ठान की पूर्णाहुति पश्चात् दिनांक छः अगस्त 2017 को बतलाया। आइए, इस प्रसंग से पहले अनुष्ठान के विषय में चर्चा करते चलें कि जगत नियन्ता, अकारण दयालु गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज प्रत्येक वर्ष गुरु पूर्णिमा के तुरन्त पश्चात् संवाई आश्रम में आशुतोष शंकर भगवान के निमित्त एक डेढ़ महीने तक का एक सामूहिक महा रूद्र यज्ञ का आयोजन रखते थे। इस यज्ञ में आमन्त्रित ब्राह्मणों के वेदपाठ से आश्रम में जोरशोर का वातावरण रहता था। वैसे तो जगत नियन्ता जी पूरे अनुष्ठान काल में मौन व्रत रखते थे। मगर अपने साधक बच्चों के उत्थान के लिए गीता पाठ एवं प्रवचन अवश्य किया करते थे। गुरुजी कहा करते थे कि आनन्द कन्द श्री प्रभू जी के आशीर्वात्मक हाथ से दिव्य तेज धाराऐं निकल रही हैं, तुम्हारे मस्तक को छू रही हैं। इसलिए तुम्हें इस अमृत–धारा को पी कर अपने पुण्यों के भण्डार भरते रहना चाहिए। यह यज्ञ मात्र अपने लाड़लों के लिए ही नहीं, अपितु पूरे देश के कल्याणार्थ किया जा रहा है। जिससे सभी

का भावी जन्म उज्जवल एवं उच्च श्रेणी का बन सके। अतः अपने गुरू मन्त्र का अधिकाधिक जाप करके इस यज्ञ में गोते लगाते रहो....इत्यादि।

इसी परम्परा को निभाते हुए सिद्धयोगाधिपति हृदय सम्राट गुरू देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के परम लाड़ले शिष्यों योगी श्री दास लाल जी महाराज एवं योगी श्री देवेन्द्र ब्रह्मचारी जी महाराज ने क्रमशः संवाई आश्रम एवं दिल्ली आश्रम में श्री अनिलशास्त्री जी एवं वेद वेदान्त विद्यालय कर्णवास बुलन्दशहर के विद्वान ब्राह्मणों द्वारा निष्ठा पूर्वक इस यज्ञ का अयोजन किया। दिल्ली आश्रम में यह रूद्रमहायज्ञ दिनांक दो अगस्त 2017 से प्रारम्भ होकर छः अगस्त को पूर्णाहूति–संकीर्तन ब्रह्मचारी जी द्वारा प्रवचन–दिव्य आरती–छप्पन भोग भण्डारे के साथ सैकड़ों श्रद्धालुओं की उपस्थिति में जयकारों के साथ सम्पन्न हुआ।

दिल्ली के इस महायज्ञ में गाँव चुरमूरा (मथुरा) से पधारे श्री गोपाल ने बतलाया कि सन् 1987 में संवाई धाम में गुरु चन्द्र मोहन जी महाराज से दीक्षा लेने का गर्व प्राप्त किया। पश्चात् सिद्धों की सेवित भूमि संवाई और दिल्ली आश्रमों में 8–10 वर्ष सेवारत रह कर मैंने अमूल्य धन कमाया। वर्तमान में मेरे पास ढाई बीघा उपजाऊ भूमि है। जिसमें नींबू का बगीचा है। बगीचे के एक छोर पर एक मन्दिर के रूप में शिवलिंग सहित त्रयलोक वन्दित स्वयं नारायण महाप्रभू श्री राम लाल जी महाराज और प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर अनन्त गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज एवं आशुतोष भगवान शिव शंकर के मन मोहक स्वरूप विराजमान हैं। इस मन्दिर में दोनों समय आरती, पूजा अर्चना, वन्दना, निवेदना और समायानुसार स्वाध्याय, कीर्तन, भजन, आदि का क्रम चलता रहता है। गुरू जी के इस बगीचे में प्यारे प्यारे बच्चों वाली पाँच गौधन की सेवा करने का भी मुझे सौभाग्य प्राप्त है। अतः गौ रस से दैनिक अभिषेक करना मेरी नियति बन गया है। मैं आनन्द विभोर हूँ कि मेरे भाग्य की चाबी मेरे गुरू देव भगवान के पास है। अतः इस समय न तो दौलत की दौड़ में हूँ और न मैं शौहरत की दौड़ में हूँ।

सन् 2002 में मेरे साथ एक विलक्षण घटना घटी। हम अपने कार्य से आगरा जा रहे थे। यातायात साधनों के अभाव मे हम थ्रीव्हिलर गणेश टैम्पो में सवार हो गए। सात–आठ सवारी पास शुदा यह टैम्पो बाइस सवारियाँ ले कर अपने यौवन पर सरपट दौड़ा जा रहा था कि अचानक सामने तीव्र गति से आ रहे एक ट्रक ने टैम्पो में टक्कर दे मारी। भयंकर धमाके साथ हमारा टैम्पो उलट गया। सभी सवारी चोटिल हो गयीं। कई बेहोश हो गए। मैं भी बेहोश हो गया। मेरी पूज्या चाची जी ने घटना स्थल पर ही दम तोड़ दिया। मेरी आँख व आस–पास में बाइस टाँके लगे। बारह–चौदह घन्टे पश्चात् जब मुझे होश आया तो स्वयं को आगरा इमरजैन्सी अस्पताल के आई.सी.यू. में पाया। मेरे बन्धु बान्धव मेरे जीवन की आशा छोड़ कर पंख बिन पक्षी और सूंड बिन हाथी की तरह निराशा की गोद में बैठ कर गुरू देव के श्री चरणों में बराबर गुहार लगा रहे थे कि :–

गुरूदेव दया करके, हम पै दया करना
तेरे दर के हैं भिखारी, गोपाल को स्वांसा देना।। इत्यादि

आ गई लहर शिवा के मन में:–डॉ. साहिब ने मेरे होश में आने का शुभ समाचार परिवार वालों को सुनाया। समाचार मिलते ही परिवार की खुशी का ठिकाना न रहा। जैसे लक्ष्मण की मूर्छा टूटने पर श्री राम शिविर पुलकित हो उठा था। डाक्टर भी चकित थे। मगर गंगा गए गंगा दास. ....वाली बात थी।

लक्षण देख कर जब डाक्टरों ने कहा था लाचार।
उपचार में दर्शन मिले तो कह दिया दीदार।।

मगर होश आते ही मैं उदास हो गया। यह क्या, अब प्राण दाता दिखाई नहीं दे रहे थे। कहाँ गए गुरू जी? मेरे गुरू जी....गुरू जी ....गुरू जी....हाय मुझे होश ही न आता। दुर्घटना के समय से ही लीलाधारी ने मुझे अपनी मखमली गोद में ले रखा था। मैं बराबर दर्शन कर रहा था। गुरू जी हास्य विनोद कर रहे थे। जीवन में पहली बार ऐसा आनन्द भोग रहा था, ...काश! मुझे होश ही न आता। जब मैंने गोपाल से पूछा कि इतना समय गुरू गोद में आनन्द लेते लेते गुरू देव जी से क्या क्या बातें हुईं? तो प्रत्युत्तर में श्रीमान जी ने कहा कि बाबू जी,क्या बताऊँ–क्या नहीं बताऊँ?

देखे हजारों जटाजूट–देखे भगवां बाने।
जो देखा गोद बैठ के–गुरू की बातें गुरू ही जाने।

मतलब यह है कि सिद्ध गुरू की भाषा के मिठास का अनुवाद हो ही नहीं सकता। हाँ! एक बार मैंने अपनी सरस वाणी से यह अवश्य कहा था कि गुरू जी मेरी घड़ी गिर गई तो जगतात्मा पालन हार बोले, गोपाल–लल्ला तेरे जीवन की रक्षा हो गई, घड़ी और ले लेना। आप बार बार पूछ ही रहे हो तो गुरू गोद में मैने यह सीखाः–

ज्ञान ध्यान योग जप–गुरू सेवा सम नाहिं।
भक्ति मुक्ति और परम पद–सब गुरू सेवा माहिं।।

अतः मैं तो यही गाता फिरूंगा कि :–

गुरू चन्द्रमोहन कोई और नहीं ये सिद्ध गुरू हमारे हैं
जिन्हें चोरी चोरी मक्खन खाया ये ही नन्द दुलारे हैं
यमुना किनारे गऊ चराई ये काले कम्बल वाले हैं
निधि वन में जो तान सुनाई ये ही बंशी वाले हैं
अर्जुन को गीता ज्ञान दिया था हैं ये ही कृष्ण मुरारी
गुरू चन्द मोहन वाले..........भारी।।

जय गुरू देव।

ज्ञानोत्तर जीवन-निर्वाह

[स्वामीजी श्री चिदानन्द सरस्वती महाराज]

ज्ञानोदय होने के बाद ज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष को किस प्रकार की भावना में रहना चाहिए, इसका यहाँ विचार करना है। प्रथम तो–

भावाद्वैतं कुर्यात्, क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।
अद्वैतं त्रिपु लोकेषु नाद्वैतं गुरुणा सह।।

ज्ञानी को अद्वैत की भावना सदा करते रहना चाहिए, परन्तु व्यवहार में अद्वैत भावना नहीं चलती। व्यवहार तो प्रकृति का क्षेत्र है, अर्थात् वहाँ तो गुणवैषम्य के अनुसार व्यवहार में भेद रहेगा ही दृष्टान्त यह है कि (1) गाय और बाघ, इन दोनों में अद्वैतदृष्टि से कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों की ब्रह्मरूप हैं। परन्तु व्यवहार के समय यह दृष्टि काम नहीं आती। गाय को घर में बाँधते हैं, बाघ को नहीं। (2) शक्कर और संखिया–शक्कर को तो लोग खाते हैं और संखिया को कोई खाये तो मर जाये। (3) अपनी माँ, स्त्री और बहन–अद्वैतदृष्टि से तीनों ही ब्रह्मरूप हैं, व्यवहार में तीनों स्त्रियाँ हैं; शरीर भी एक–सा है तथा एक ही आत्मा तीनों में है। फिर भी व्यवहार तो सम्बन्धानुसार यथायोग्य ही होना चाहिए। अन्यथा मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रहेगा। अतएव अद्वैत भावना में ही होता है और व्यवहार तो द्वैत के बिना हो ही नहीं सकता।

तीनों लोकों में सर्वत्र अद्वैत की भावना करे, परन्तु गुरु के साथ तो अद्वैत की भावना भी नहीं की जा सकती। गुरू और शिष्य दोनों ही जीवन्मुक्त हो तथा अद्वैतनिष्ठा में हों, तथापि शिष्य के लिए उचित है कि गुरू को ईश्वर–तुल्य मानकर उनकी सेवा करे। समानता तो कभी की जा सकती ही नहीं। इसीलिए ज्ञानोत्तरकाल के व्यवहार के लिए कहा है–

यावदायुस्त्रयो वन्दा, वेदान्तो गुरुरीश्वरः।
आदौ ज्ञानप्रसिद्ध्यर्थं, कृतघ्नत्वापनुत्तये।।

गुरू और शास्त्र में ईश्वर बुद्धि न हो तो ज्ञान का उदय ही न हो। अतएव पहले तो इन तीनों में पूज्यबुद्धि होनी चाहिए। (यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।) ज्ञान होने के बाद भी ऐसी बुद्धि रखनी चाहिए, अन्यथा कृतघ्नता का दोष लगेगा। अतः शरीर जब तक जीवित

है, तब तक गुरू, शास्त्र और ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण भक्ति–भाव रखे। क्योंकि–

ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना।

महाभयकृतत्राण द्वित्राणामुपजायते।।

ईश्वर के अनुग्रह से ही मनुष्य में अद्वैतज्ञान प्रकट होता है–

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तम्यैषआत्माविवृणुतेतनुंस्वाम्।

यह उसके बिना नहीं होता। यदि ज्ञान का अभिमान आ जाये और शरीर के रहते 'मैं ही ईश्वर हूँ' यह मान बैठे और गुरू शास्त्र की अवमानना कर बैठे तो किया कराया सब धूल में मिल जाता है। अतएव यह कहना पड़ता है कि किन्हीं विरले भाग्यशाली पुरुषों को ही अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति होती है।

ऐसा अभिमान न आये, एतदर्श जीवन–निर्वाह किस प्रकार की भावना में करना चाहिए–अब यही विचार करना है।

भगवान् श्री रामचन्द्रजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री हनुमान् जी कहते हैं–

देहदृष्टया तु दासोऽहं, जीवदृष्टया त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति, मे निश्चिता मतिः।।

देहदृष्टि से दास हू, जीवदृष्टि से अंश।
पर तू ही मैं तत्त्वतः, एतावत् सारांश।।

इस प्रकार जब तक शरीर है, तब तक उससे सत्कर्म करते रहना चाहिए (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य, गीता 18/46)। स्वरूप से एक–रूप होने पर भी, जब तक शरीर की उपाधि है, तब तक ईश्वर के साथ समता न करे। तब फिर ईश्वर के साथ एकता कब होगी? 'अहं ब्रह्मस्मि' का अनुभव कब होगा?

इसके लिए करना कुछ नहीं है। केवल जब तक शरीर जीवित है, तब तक देखते रहना है–दृष्टा–भाव में स्थिर रहना है। इस बात को समझाते हुए अवधूत दत्तात्रेय कहते हैं–

घटे भिन्ने घटाकाशमाकाशे लीयते यथा।

देहाभावे तथा योगी स्वरूपे परमात्मनि।।

जब घड़ा विद्यमान होता है, उस समय भी घटाकाश स्वरूप से तो महाकाश ही होता है। तथापि जब तक घट का आवरण है, तब तक उसका अनुभव नहीं होता, तद्रू पता नहीं होती। इसी प्रकार आत्मज्ञानी देह के विद्यमान रहते भी ब्रह्मरूप ही है (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति) तथापि

(शेष पृष्ठ 28 पर)

चित्त-शुद्धि

श्री एन., व्यास, एडवोकेट इन्दौर (म.प्र.)

किसी भी कर्म की शुद्धि के लिए यह जानना परम आवश्यक है कि उसका सुगम स्थान कहाँ है। विचार करने पर मालूम होगा कि कर्त्ता के भाव और संकल्प से कर्म बनता है। **'मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:'** मन ही मनुष्य के बन्धन व मोक्ष का कारण है वही मनुष्य को चिर शान्ति प्रदान कर सकता है और वही उसे नरक में ले जाता है। यादृशी भावना अस्य सिद्धोर्भवति तादृशी।' अत: यह सिद्ध हुआ कि जैसा जिस मनुष्य का भाव है वैसा ही उसका स्वरूप है। महर्षि पतंजलिजी कहते हैं 'योगश्चित वृत्तिः निरोधः' जीवात्मा चित्त की वृत्तियों का निरोध करके ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। कारण कि चित्त वृत्तियों के निरोध करने से ही चित्त शुद्ध होता है। अत: यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम मनुष्य को अपना चित्त शुद्ध करना ही होगा। जगदात्मा योग योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् ने श्री मद्भगवत् गीता के 15वें अध्याय के 11वें श्लोक में स्पष्ट कहा है—

'यतन्तो योगिनश्चैनं, पश्यन्त्यात्मन्य वस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो, नैनं पश्यन्त्य चेतस:।।

क्योंकि योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्त्व से जानते हैं और जिन्होंने अपने अन्त:करण को (चित्त को) शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानी जन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।

अब हमें देखना यह है कि, चित्त को हम किन उपायों से शुद्ध कर लेने पर समर्थ हो पावेंगे। इसके लिए कुछ उपाय निम्नांकित हैं—

(1) बुरे और अनावश्यक संकल्पों का त्याग ही चित्त शुद्धी का सर्वप्रथम उपाय है।

(अ) जिस काम से किसी का अहित होता है, तद् विषयक संकल्पों का नाम बुरे संकल्प हैं।

जिसका वर्तमान से सम्बन्ध न हो। जिस संकल्प को पूर्ण करने की साधक में योग्यता या शक्ति न हो। और यदि शक्ति या योग्यता हो तो भी वर्तमान काल में उसे पूरा करना आवश्यक न हो या सम्भव न हो, ऐसे संकल्पों का नाम है अनावश्यक संकल्प। उपर्युक्त कर्मों की निवृत्ति के पश्चात् साधक के मन में अनावश्यक और मन में ही संकल्प उठते हैं, उनकी पूर्ति अपने

आप होती है, यह प्राकृत नियम है।

(2) आवश्यक और भले संकल्पों की पूर्ति के सुख में रस न लेना। किन्तु परम प्रभु परमात्मा की अहैतुकी कृपा का अनुभव करते हुए उनमें प्रेम और विश्वास पुष्ट करते रहना— यह चित्त शुद्धि का दूसरा उपाय है।

(अ) **आवश्यक संकल्प**—आवश्यक संकल्प उनको कहते हैं जिनके अनुसार साधक की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है और जिनकी पूर्ति का सम्बन्ध वर्तमान से, जैसे सोचना कि शरीर सम्बन्धी क्रिया विषयक संकल्प एवं अपनी योग्यता के अनुसार अन्यान्य वर्तमान प्रवृत्ति से या निवृत्ति से सम्बन्ध रखने वाले संकल्प।

(ब) **अच्छे संकल्प**—उनको कहते हैं जिनमें किसी भी प्राणी की प्रसन्नता तथा हित निहित हो।

(3) जब कभी साधक को ऐसा प्रतीत हो कि मेरे आवश्यक और शुभ संकल्पों की भी पूर्ति नहीं हो रही है तो उस समय मन में किसी भी प्रकार की निराशा या खिन्नता को मन में स्थान नहीं देना चाहिए, किन्तु ऐसा रूप आना चाहिए कि, प्रभु अब मुझे अपनाने के लिए या अपना प्रेम प्रदान करने के लिए मेरे मन की बात पूरी न करके अपने मन की बात पूर्ण कर रहे हैं। तथा ऐसे भाव से उन प्रेमास्पद के संकल्प में अपने संकल्पों को मिलाकर उनकी प्रसन्नता से और उनकी प्रेम प्राप्ति की आशा की पूर्ण उमंगों में आनन्दमग्न हो जाना, यह अन्तःकरण की परमशुद्धि का अन्तिम साधन है।

चित्त शुद्ध होने से निर्विकल्प स्थिति देह रहित मोक्ष होता है। उस समय साधक के जीवन में सब प्रकार के दुःखों की निवृत्ति तथा स्वाधीनता और सामर्थ्य—इनका अनुभव होता है, परन्तु उससे होने वाले सुख में भी साधक को सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए और न ही उसका उपभोग ही करना चाहिए प्रत्युत उदासीन भाव से उसकी उपेक्षा करके भगवान के प्रेम एवं विश्वास को ही पुष्ट करते रहना चाहिए।

जिस साधक के पास न धन का बल है, न शरीर बल है, न बुद्धि बल है, न इन्द्रिय बल है, न समाज का बल है और न सात्विक बल है, ऐसा दीन–हीन पतित से भी पतित मनुष्य सिद्ध सिद्धान्त के अनुसार सुगमता से अपने साध्य को अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं।

अपने सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए दूसरों के सिद्धान्त को आदर करना ही धर्म है।

\+ \+ \+

क्रिया शुद्धि के लिए साधक को प्रथम अपने अहंभाव को शुद्ध करना आवश्यक है।

विकल्प रहित यह निश्चय करे कि, मैं सर्व शक्तिमान प्रभु का हूँ। साधक जिस वर्णआश्रम या परिस्थिति में रहता हो उसे तो भगवान की नाट्यशाला का स्वांग समझे व तद्नुसार जो स्वांग जो कर्म जब करना आवश्यक हो उसे खूब उत्साह व सावधानी के साथ प्रसन्नता से करता रहे उस अभिनय को अपना जीवन न माने। ऐसा होने से अभिनय के रूप में होने वाली प्रवृत्तियों का राग उसके चित्त पर अंकित नहीं होगा। इससे साधक को निर्वासना आ जायेगी। अभिनय करते हुए साधक यह भाव रखे कि, 'मैं उन प्रभु का हूँ। मैं जो कुछ कर रहा हूँ उन्हीं की प्रसन्नता के लिए कर रहा हूँ और मेरे इस अभिनय को प्रभु देख रहे हैं।' साधक को चाहिए कि प्राप्त विवेक द्वारा अपने मन की दशा को भली–भाँति निरीक्षण करे कि, उसकी आन्तरिक रुचि क्या है? उसमें कौन–कौन–सी आसक्ति छिपी है इस प्रकार मन के अन्तस्तल में रुचि और राग के रूप में छिपे हुए अपने दोषों को देख लेने पर वे दोष अपने आप नष्ट हो जाते हैं और चित्त शुद्ध हो जाता है यह प्राकृतिक नियम है। जब तक गुरुजनों और शास्त्रों द्वारा सुनकर अपने दोषों का क्षय होता है, उनको सद्‌गुणों की भावना से दबाते रहता है तब तक वे एक बार दबते जाते हैं पर उनका सम्पूर्ण नाश नहीं होता। अतः पुनः मौका पाकर समय पर वे घोर रूप में भड़क उठते हैं किन्तु प्रत्यक्ष रूप से देख लेने के बाद दोषों का मूल सहित नाश हो जाता है। यद्यपि बुद्धिजन्य विवेक द्वारा साधक दोनों को दोष रूप में समझता है, उनको छोड़ना भी चाहता है उसी प्रकार वह सद्‌गुणों को भी समझता है, उनको धारण करना भी चाहता है परन्तु जब तक हृदय व विवेक की एकता नहीं हो जाती मन को उन दोषों में रस आता रहता है, और गुणों के रस का अनुभव नहीं होता तब तक दोषों का त्याग व गुणों का संग्रह नहीं हो सकता। अतः साधक को चाहिए कि वह आत्म विवेक के द्वारा गहराई से अपने दोषों का निरीक्षण करके विवेक और हृदय की एकता स्थापित करे अर्थात् मन और बुद्धि में जो दूरी है उसे मिटाकर मन की बुद्धि में विलीन करदे। ऐसा होने से दोषों की उत्पत्ति नहीं होती और गुणों का अभिमान नहीं होता। तब बुद्धि अपने आप सम और स्थिर हो जावेगी।

गोरक्षपीठ में सिद्ध गुफा संवाई आश्रम का प्रतिनिधित्व

प्रेषक—अनिल दूबे, दतिया

विगत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी गोरक्ष पीठ गोरखपुर में युग पुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजय नाथ, राष्ट्र संत ब्रह्मलीन अवेद्यनाथ जी महाराज की पुण्य स्मृति में साप्ताहिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में दूर–दूर से आये संतों ने मंच को सुशोभित किया। प्रतिदिन महाराणा प्रताप के विद्यालयों के छात्र/छात्राओं, प्राचार्य, शिक्षकों की उपस्थिति सराहनीय थी।

कार्यक्रम का आयोजन पीठाधीश एवं उ.प्र. के माननीय मुख्यमंत्री आदित्य नाथ जी के संरक्षण में दिनांक 4 सितम्बर 2017 से 10 सितम्बर 2017 तक विधिवत् रूप से चला।

श्री सिद्ध गुफा संवाई (आगरा) का प्रतिनिधित्व श्री सिद्ध गुफा संवाई के संचालक योगी डॉ. दासलाल जी महाराज ने किया; 7 सितम्बर 2017 को अपने उद्बोधन में गौ रक्षा पर वैदिक काल से आधुनिक काल तक गौ की महिमा का वर्णन किया।

'गावः विश्वस्य मातरः' अर्थात गौ सारे विश्व की माँ है, ये वेद वाक्य ही पर्याप्त प्रमाण है गौ की महिमा बताने का।

इसके साथ ही उन्होंने वर्तमान काल में रोगों की निवृत्ति के लिए पंच गव्य के अचूक प्रयोगों का वर्णन किया। गौ का दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर अमृत है। इन्हीं पाँचों के मिश्रण से पंच गव्य बनता है। जिससे मनुष्य की असाध्य से असाध्य रोग एवं बीमारियाँ दूर होती देखी जा रहीं हैं। भारत सरकार के द्वारा गौ वंश की रक्षा के लिए किये जा रहे सराहनीय कार्यों का भी उल्लेख किया।

8 सितम्बर को उ.प्र. के उपमुख्य मंत्री एवं उच्च शिक्षा मंत्री डॉ. दिनेश शर्मा जी का उद्बोधन हुआ जिसमें उन्होंने शिक्षा स्वास्थ्य विषय पर विशेष चर्चा की, कि शिक्षा चरित्र निर्माण के लिए अति आवश्यक है। उन्होंने कहा शिक्षित व्यक्ति ही अच्छे समाज का विकास कर सकता है, एवं समाज के उत्थान के लिए शिक्षित व्यक्ति का बड़ा अनमोल योगदान रहता है।

9 सितम्बर को उ.प्र. के विधान सभा अध्यक्ष हृदय नारायण दीक्षित जी गोरक्षपीठ के ब्रह्मलीन महन्त श्री दिग्विजय नाथ एवं राष्ट्र संत अवैद्यनाथ जी के द्वारा हिन्दु समाज के एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए किये गये कार्यों का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया तथा संतों को श्रद्धांजलि अर्पित की। श्रद्धांजलि समारोह में सम्मिलित होने वाले संतों में जगत गुरू शंकराचार्य (जोशी मठ), वासुदेवानन्द सरस्वती, रामजन्म भूमि न्यास के अध्यक्ष नृत्य गोपाल दास जी, परमार्थ आश्रम के स्वामी चिन्मयानन्द जी महाराज, महन्त गोपाल दास जी, अयोध्या से महन्त सुरेश दास जी, नैमिषारण्य से विद्या चैतन्य जी, शिवनाथ जी महाराज (उड़ीसा) से, अयोध्या से संत रामविलास वेदान्ती जी, विभिन्न संस्थाओं के विभाग प्रमुख, गोरखपुर के महाराणा प्रताप विद्यालय के प्राचार्य सभी ने गोरक्षपीठ के ब्रह्मलीन महन्तों को याद किया।

सभी संतों ने ब्रह्मलीन महन्तों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके अधूरे कार्यों को और आगे बढ़ाने का सन्देश दिया। श्रद्धांजलि देने वालों की हजारों में संख्या थी। श्री सिद्ध गुफा संवाई के आचार्य डॉ. दासलाल जी ने भी योगी जी का तन, मन, धन से साथ देने की बात कही विशेष करके पूर्वांचल के लोगों से इस बात पर ध्यान देने को कहा। इस प्रकार से 10 सितम्बर को पूज्य महन्तों को भाव-भीनी श्रद्धांजलि एवं भण्डारा के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ। यह कार्यक्रम बड़ा अविस्मरणीय रहेगा।

आचार्य-श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम
योग प्रचार के आगामी कार्यक्रम

अक्टूबर 11 से 15 तक

टोड़रपुर-वाराणसी

फोन-9453357801

अक्टूबर-27 से 29 तक

ठक्कर बापा इंटर कॉलेज कालपी-जि. जालौन

छात्र जीवन में योग की उपयोगिता

राजेश कुमार सिंह (बलिया)

प्राथमिक पाठशालाओं में विद्यार्थियों को योग के विषय में सिखाना लोग उपयुक्त नहीं समझते। छः से दस वर्ष के बच्चों को योग की एक औपचारिक विद्या के रूप में अभ्यास करने के लिए अत्यन्त अल्पायु का समझा जाता है; परन्तु बच्चों के लिए यह समय प्रभावजन्य होता है। उन वर्षों का उपयोग बच्चों में यौगिक प्रवृत्तियों को उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है। अध्यापक, सीखने तथा सिखाने की वृत्तियों का अनुसरण करके योग प्रभावी रूप से सीखने के लिए उचित पृष्ठभूमि तैयार कर सकते हैं, जो इन्द्रिय ज्ञान के प्रशिक्षण में सहायक होगा। अध्यापकों द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष विधियों का अनुसरण करके यौगिक मूल्यों को आत्मसात कराया जा सकता है। विद्यालय की सामान्य गतिविधियों जैसे प्रातःकालीन सभा, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा सामूहिक गान आदि बच्चों के व्यक्तित्व में सद्भावना विकसित करने में सहायक होते हैं। उसी बीच खेल तथा अन्य प्रचलित व्यायामों के साथ–साथ वे शरीर की सही स्थिति तथा लयात्मक गति पर उचित ध्यान दे सकते हैं। इस अवस्था में सही श्वांस प्रक्रिया के बारे में भी सीखा जा सकता है। बच्चों को यौगिक मूल्यों से सम्बन्धित चुनी हुई कहानियों तथा आत्मकथाओं की जानकारी देने से तथा प्रेरणास्पद कविताओं, श्लोकों तथा राष्ट्रीय गीतों का गान करवाने से तथा प्रातःकालीन सभा, बच्चों द्वारा सामूहिक एकता और जब भी आवश्यक हो एक से पाँच मिनट तक का मौन का निर्देश देने से योग बल का विकास होता है।

ग्यारह–पन्द्रह वर्ष की उम्र के होने पर वे अपने व्यवहार में यौगिक मूल्यों की सराहना तथा उन्हें आत्मसात कर सकते हैं क्योंकि इस उम्र में बच्चों को अपने शरीर, मस्तिष्क तथा इन्द्रियों की मूलभूत जानकारी पहले से ही हो जाती है। इस अवस्था में वे योग सिद्धान्त और प्रायोगिक स्तर को समझ सकते हैं। सत् कर्म और ध्यान से मस्तिष्क को भी बल दे सकते हैं।

योग शिक्षकों को चाहिए कि उच्च विद्यालयों में बच्चों के लिए आसनों के क्रमिक निर्देशों पर ध्यान दें। ऐसे योगिक आसनों का अभ्यास करवायें जिनसे बच्चों पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े। इसी तरह श्वांस को समझने तथा इसे धीमा तथा लयात्मक बनाने सम्बन्धी औपचारिक प्राणायाम का अभ्यास करवायें। अन्य विषयों की तरह निर्देशात्मक तकनीक का प्रयोग न करके योग को पूरे जीवन के एक सहज अंग की तरह पढ़ाया जाये। योग एक प्रायोगिक विज्ञान है इसे अनुभवों से ही सीखना चाहिए।

छात्रों को ध्यान पूर्व आसन करने में सहायता करने से उनके शरीर में लचीलापन तो आता ही है साथ–साथ ये आत्मनिर्भर तथा आत्मविश्वासी भी बनते हैं। उसी तरह प्राणायाम के अभ्यास से बच्चे ताजगी तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव करते हैं बशर्ते कि प्राणायाम लयात्मक ढंग

से सिखाया जाये। यौगिक मूल्यों को केवल बातों तथा श्रवण तक ही सीमित न रखा जाना चाहिए।

माध्यमिक विद्यालय स्तर में बच्चे चूँकि किशोरावस्था से गुजर रहे होते हैं, अतः उनमें भौतिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक स्तर पर परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में स्वतंत्र मानसिक दृष्टिकोण का विकास होता है। वे अपने भविष्य के बारे में, अपनी रुचि, विचार तथा जीविका के बारे में सोचना आरम्भ करते हैं। वे आशावादी तथा उच्च आदर्शों के प्रतिपालक होते हैं। वे मनोवैज्ञानिक समस्याओं का भी सामना करते हैं। जिससे विद्यालयों में कई समस्याएँ तथा अनुशासनहीनता की घटनायें उत्पन्न होती हैं। ये घटनाएँ अपचार, विनाश तथा उदासीनता के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। छात्रों के व्यक्तिगत जीवन तथा विद्यालयों के सामान्य वातावरण में ये परिस्थितियाँ योग शिक्षा की आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाती हैं।

किशोरावस्था में, ऊपरी सीमा के छात्रों को योगशिक्षा, दिशानिर्देश दे सकती है। वे अपने आगे के जीवन में अपने प्रयासों से योग के गम्भीर पहलुओं को जान सकते हैं। वे आत्मसंतुष्टि की उपयोगिता को सराह सकते हैं और जिसे वे चयन करते हैं तथा जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं; दोनों बातों का प्रादुर्भाव कर सकते हैं। इस अवस्था में वे अपरिग्रह, संतोष, ब्रह्मचर्य तथा ईश्वर प्रणिधान आदि की उपयोगिता को समझ सकते हैं। वे समानता, सामाजिक न्याय, वातावरण का संरक्षण, अन्तर्राष्ट्रीय तथा मानवीय भाईचारे जैसे आधुनिक मूल्यों की अच्छी तरह जाँच कर उनका अनुसरण कर सकते हैं।

छात्रों को स्वयं के लिए सत्य का पता लगाने के लिए उत्साहित करना चाहिए। इसमें यह आवश्यकता है कि मस्तिष्क खुला हो तथा धार्मिक पूर्वाग्रह न हो। छात्रों को यह समझाया जाए कि योग का पथ किसी विशिष्ट आयु वर्ग के लिए ही सीमित नहीं है यह सम्पूर्ण जीवन के लिए है। सहयोग को ऊँचे मूल्यों के लिए रखकर स्थूल से सूक्ष्म क्षेत्र में नियमित रूप से बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाए।

आधुनिक युग में धर्म तथा विज्ञान के बीच एक प्रकार का विवाद उत्पन्न हो गया है। बाहरी दुनिया को समझने के लिए विज्ञान का अध्ययन किये हुए छात्रों को आतरिक जीवन को समझने के लिए धर्म का अनुसरण करने की कोशिश करनी चाहिए। धर्म का अर्थ है वह साधन जिससे मनुष्य का इहलोक के साथ परलोक भी सुधर जाए। उन्हें धर्मों को जोड़ने की प्रवृत्ति रखनी चाहिए। भौतिक तथा मानसिक स्तर पर तथा इससे आगे भी योग का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए योग का अनवरत अभ्यास करना चाहिए। योग के आधारभूत सिद्धान्त का यदि सही पालन किया जाए तो सफलता उचित समय पर अवश्य मिलेगी। लक्ष्य तुरंत प्राप्त न हो तो धैर्य को खोना नहीं चाहिए तथा किसी भी प्रकार की निराशा से बचना चाहिए। यूँ तो योग में सम्पूर्ण विश्व की रुचि है। इस सम्बन्ध में शोध अध्ययनों के परिणाम योग शिक्षा की मान्यता के प्रबल प्रमाण हैं।

चित्त शुद्धि के उपाय

प्रेषक—जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

सारी सृष्टि सत, रज और तम का ही परिणाम है। चित्त (महतत्व) इन तीनों गुणों का प्रथम सत्व प्रधान परिणाम है। इस कारण इसको चित्त सत्व भी कहते हैं। चित्त सत्व ज्ञान स्वभाव वाला है। जब यह चित्त रजोगुण युक्त होता है और अन्य दोनों गुण गौण होते हैं, तब दुख, चंचलता, चिन्ता, शोक, संसार के कार्यों में प्रवृत्ति, ज्ञान–अज्ञान, धर्म–अधर्म एवं राग–वैराग्य की मिश्रित प्रवृत्ति साधक में उदित होती है।

जब यह चित्त तमोगुण युक्त होता है और रजोगुण, सतोगुण गौण होते हैं, तब साधक की प्रवृत्ति निद्रा, मोह, भय, आलस्य, दीनता, अज्ञान, अधर्म, राग आदि से युक्त होती है।

रजोगुण और तमोगुण से अभिभूत होने के कारण चित्त में मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष उपस्थित हो जाते हैं। ये दोष जन्म–जन्मान्तरों से पनपते चले आ रहे हैं। परमात्मा की प्राप्ति के लिए इन दोषों से अन्तःकरण का शुद्ध होना आवश्यक है।

मल दोष का अर्थ है—चोरी, डकैती, हत्या जैसे कुकर्मों के कारण हुए पाप का दोष। इस दोष का परिहार, योगासन, ध्यान और प्राणायाम से होता है। अथवा किसी पुण्य के उदय होने से किसी संत के उपदेश से ह्रदय परिवर्तन होने से इस दोष का परिहार होता है। जैसे वाल्मीकि, अंगुलिमान आदि।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसिनो हिं सः।।

अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी अनन्यभाव से परमात्मा का ध्यान, भजन अपनी निश्चयात्मक बुद्धि से करता है तो वह साधु ही है।

विक्षेप दोष का अर्थ है मन की चंचलता। रजोगुण की प्रधानता के कारण चित्त विक्षिप्त रहता है। इस दोष के परिहार के लिए, रामायण, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए तथा सत्पुरुषों की संगति करना चाहिए। सात्विक आहार करना होता है।

आवरण दोष अज्ञानता के कारण होता है। इसका परिहार गुरु–निष्ठा, गुरु–भक्ति और सेवा तथा उनकी आज्ञा पालन से होता है।

भोजन :

चित्त के ऊपर भोजन का अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसा अन्न वैसा मन। हमारे शरीर में जितनी शक्तियाँ कार्य कर रहीं हैं। वे समस्त शक्तियाँ आहार से ही प्रभावित होती हैं। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं–''हाथी सबसे बड़ा पशु है, किन्तु वह शाकाहारी है। इस कारण वह शांतिप्रिय पशु है। इसके विपरीत शेर मांसाहारी पशु है। यही कारण है कि वह अधिक चंचल और भयानक पशु है।

भोजन बिल्कुल सादा, सात्विक, हल्का और पुष्टिकारक होना चाहिए। दाल, रोटी, घी, दूध, चीनी आदि सात्विक आहार करना चाहिए।

भोजन स्वउपार्जित एवं न्यायोचित उपलब्ध किए हुए पदार्थों का होना चाहिए। भोजन स्वउपार्जित और नेक कमाई का तो है, परन्तु बनाने वाली देवी का मन खिन्न है अथवा वह उद्विग्न मन से बनाती है तो उस भोजन से मन में अशान्ति होती है। अथवा वह देवी मासिक धर्म में आ गई है और उसकी दृष्टि भोजन पर पड़ गयी है, तो वह भोजन भी निषिद्ध है।

भोजन बनाने के पूर्व भोजन बनाने के बर्तन शुद्ध होना चाहिए। भोजनालय भी शुद्ध रखना चाहिए। भोजन में तामसिक पदार्थों जैसे मांस, मछली, अण्डा, लहसुन, प्याज आदि का सेवन पूर्णतः वर्जित है। बासी भोजन भी नहीं करना चाहिए। भोजन बनने के बाद तीन घण्टों के भीतर ही खा लेना चाहिए। फ्रीज में रखा भोजन बासी हो जाता है।

चोरी, डकैती, हत्या, बेईमानी अथवा अन्याय से उपार्जित किए हुए भोजन के मूल में ही अशुद्ध भावना होती है। इसलिए उस भोजन के सेवन से चित्त अशुद्ध हो जाता है और अशान्त भी रहता है।

जिस प्रकार विष्ठ आदि गंदी वस्तु को देखकर चित्त खिन्न हो जाता है, उसी प्रकार अशांत व्यक्ति, शूद्र, चाण्डाल, दुष्कृत्य करने वाले दुष्ट को देखकर भी चित्त क्षुभित हो जाता है।

चील, कौआ, गीध जैसे गंदगी खाने वाले जीवों को देखकर भी चित्त पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस बात की विशेष सावधानी रखी जाये कि खाद्य वस्तुओं को ये जीव स्पर्श न कर पावें। यद्यपि स्थितप्रज्ञ पूर्ण ज्ञानी के लिए कुत्ता, कौवा, चाण्डाल आदि सभी ब्रह्म स्वरूप हैं। परन्तु एक साधारण योग की सीढ़ी वाले साधक के लिए ये बातें विचारणीय हैं।

व्यवहार :

संत विनोबा भावे का कथन है कि चित्त शुद्धि के लिए साधक का व्यवहार भी शुद्ध होना

चाहिए। मन को बाहरी चिन्तन से मुक्त रखना चाहिए। कुसंग से सदा बचना चाहिए। सांसारिक झंझटों से जितना दूर रहा जायेगा, उतना ही मन शुद्ध होगा। बाह्य वस्तुओं के चिंतन की अपेक्षा ईश्वर चिन्तन सदा करते रहना चाहिए। ईश्वर की विचित्र सृष्टि का अवलोकन करके उसके अनूठे कार्यों का चिंतन करते रहने से चित्त शुद्ध होता है।

आत्म परीक्षण :

चित्त शुद्धि के लिए सदैव आत्म परीक्षण करते रहना चाहिए। अपने द्वारा किए गए दिन भर के कार्यों के गुण–दोषों का परीक्षण सोने से पूर्व करते रहना चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास करते रहने से साधक चित्तवृत्ति दोष से मुक्त हो जाता है।

परिसीमित जीवन :

चित्त शुद्धि के लिए जीवन परिसीमित होना चाहिए।

मुक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा।।

समस्त कार्य परिसीमित होना चाहिए। आहार भी नपा–तुला होना चाहिए। पेट का दो भाग भोजन से तथा एक भाग पानी से भरना चाहिए। और शेष चौथा भाग हवा के लिए छोड़ देना चाहिए। विहार अर्थात् घूमना या परिश्रम के कार्य भी उतने ही करना चाहिए, जितनी शरीर में सामर्थ्य हो। काम–धन्धे भी परिसीमित होना चाहिए। अधिक व्यस्तता के कारण शरीर में थकावट आ जाती है और चित्त अशान्त रहता है। न अधिक सोना और न अधिक जागना ही चाहिए। युवा पुरुष को कम से कम छ: घण्टे नींद लेना चाहिए। अधिक जागने से भी मस्तिष्क में गर्मी बढ़ जाती है और चित्त अशान्त रहता है। छ: घण्टों से अधिक सोने से शरीर में शिथिलता आ जाती है, आलस्य बना रहता है। अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। आँख, कान, जिह्वा आदि की चेष्टाएं परिसीमित होना चाहिए।

साधना :

साधना किसी पवित्र स्थान, नदी के तट, या तीर्थ स्थान पर करना चाहिए। यदि इतना करना असम्भव हो तो साधना के किए अपने निवास गृह में ही एक पृथक पूजा–पाठ का कक्ष होना चाहिए। उस कक्ष में अपने से भिन्न विचार वाले व्यक्ति को प्रविष्ट नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि वह अपने अशुद्ध परमाणु वहां छोड़ेगा और मन क्षुवित होगा। समान विचार वालों के सम्पर्क में रहकर भगवत चर्चा सदैव करते रहने से चित्त शुद्ध रहता है।

चित्त के अन्दर राग–द्वेष, दूसरों में दोष दृष्टि रखना, क्रोध आदि दुर्गुण होते हैं। इन दुर्गुणों को दूर करने के लिए योग दर्शन में कहा है–

मैत्री करुणामुदितोपेक्षायां सुखदु:खपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।

अर्थात् सुखी व्यक्तियों को देखकर उनसे मित्रता करने की भावना से चित्त से राग–द्वेष की निवृत्ति हो जाती है।

दुखी मनुष्यों पर करुणा की भावना रखने की घृणा करने का भाव चित्त से हट जाता है।

पुण्यात्मा पुरुषों के प्रति हर्ष की भावना करने से दोष दृष्टि या छिद्रान्वेषण की कुभावना चित्त से निकल जाती है।

पापी मनुष्यों के प्रति उदासीनता धारण करने से चित्त निर्मल हो जाता है। इस प्रकार से समस्त उपाय चित्त शुद्धि के हैं। चित्त शुद्ध हो जाने पर चित्त में एकाग्रता उदित हो जाती है।

(पृष्ठ 17 का शेष)

जब तक देह की उपाधि है, तब तक उसका अनुभव नहीं होता, तद्रूपता नहीं होती; तीनों देहों का नाश होने पर ब्रह्मरूप आत्मा अपने ब्रह्म रूप के साथ एकरूप हो जाता है। इस प्रकार की पूर्ण एकता तो विदेह–कैवल्य के समय ही होती है।

इसी भाव को कबीरदासजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

जिन मरने से जग डरे, उसमें मुझे अनंद।
कब मरिये, कब भेटिये पूरन परमानंद।

तात्पर्य यह है कि जब तक देह में आत्मभावना रहती है, तभी तक मृत्यु का भय बना रहता है। परन्तु आत्मज्ञान होने के बाद वह भय दूर हो जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि मृत्यु के आने पर ज्ञानी को हर्ष होता है; क्योंकि वह जानता है कि मृत्यु तो उपाधि की होती है और उपाधि से छूटने में आनन्द किस को नहीं होता? इसी से कहा जाता है कि कब शरीर का भोग समाप्त हो और कब उपाधि से छूटकर पूर्ण आनन्दस्वरूप में एकरस हुआ जाये।

परमधाम के पथ प्रदर्शक गुरुदेव

—रचना शर्मा (गंगापुर सिटी)

कितना पावन और मनोहारी शब्द है गुरुदेव जिसका बार–बार उच्चारण करने मात्र से जीव का उद्धार हो जाता है। गुरुदेव हमारे प्राणाधार, सकल सृष्टि के संचालक, नियामक व कर्त्ता उन्हें क्या–क्या उपमा दें हमारे पास तो उनकी व्याख्या करने लायक शब्द ही नहीं हैं। अगर हम अपनी वाणी से उनका गुणगान करें तो हमारे जाने कितने ही जन्म बीत जाएँ मगर हम उनकी दयालुता उनकी परोपकारिता का वर्णन नहीं कर पायेंगे और अगर हम उनकी करुणा कृपा को शब्दों की परिधि में बांधना चाहें तो भी उन्हें शब्दों की लड़ियों में पिरोना असंभव है कहा भी गया है।

''सब पर्वत स्याही करूँ, घोरू समुन्दर जाय।
धरती का कागज करूँ, सद्गुरु स्तुति न समाय''।।

सद्गुरु जो कि अपने सूक्ष्म ज्योतिर्मय स्वरूप में सृष्टि के प्रारंभ से लेकर आदि, अन्त तथा मध्य में विराजमान रहते हैं सृष्टि के विनाश प्रलयकाल में भी जो अखण्ड ज्योति रूप में सदा ही प्रकाशित रहते हैं जो इन्द्रिय, मन बुद्धि आदि से परे हैं। इन्द्रियों से परे (सूक्ष्म) विषय है। विषय से परे मन है और मन से परे बुद्धि। बुद्धि से परे महान आत्मा और आत्मा से परे अव्यक्त। अव्यक्त से परे जो परम पुरुष महान विराट सत्ता है वह परम पुरुष परमात्मा ही है। हमारे सद्गुरुदेव वही सर्वप्रधान पराकाष्ठा व परमगति है। उसे ही वेदों में ''ओंकार'' कहा गया है। वह परमतत्व सद्गुरुदेव अपने जन्मजन्मांतर के शिष्यों का उद्धार करने के लिए ही अवतरित होते हैं, सद्गुरुदेव का प्राकट्य हम जैसे संसारी जीवों को भव पार करने के लिए होता है।

पंच ज्ञानेन्द्रियाँ जब अपने–अपने विषय कर्मों से विरत होकर मन के सहित आत्मवस्थित हो जाती है बुद्धि विविध विषयों की ओर से निश्चेष्ट हो जाती है, उसी अवस्था का नाम है–परमगति। गुरुदेव अपनी करुणा कृपा के द्वारा हमें उस परमगति तक पहुँचने का पथ प्रदर्शित करते हैं। हमारे गुरुदेव हमें उस परमगति को प्रदान करने के लिए भाँति–भाँति की लीलाएँ करते हैं जिन्हें हम साधारण मनुष्य समझ ही नहीं पाते। मगर जब सही वक्त आता है तो गुरुदेव किसी न किसी घटना, स्वप्न के द्वारा हमारे अंदर सोए हुए ज्ञान को जागृत करते हैं। हमें वह पथ वह मार्ग दिखलाते हैं जो कि हमारे जीवन का उद्देश्य है। जिस पर चलकर ही

हम अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं हमारे गुरुदेव ही प्रभु के परमधाम का मार्ग दिखलाते हैं। तथा सांसारिक, तूफानों झंझावातों से बचाते हुए अपने परमधाम में ले जाते हैं जो कि उनका स्वयं का धाम है जहाँ हमारे सद्गुरुदेव की सूक्ष्म ज्योतिर्मय स्वरूप में विराजमान हैं। उस प्रभु के परमधाम में न तो सूर्य है न चन्द्रमा न तारे गृह नक्षत्र आदि हैं वह तो सद्गुरुदेव के दिव्य तेज रूपी प्रकाश से आलोकित रहता है। हमारे सद्गुरुदेव ही वहाँ मौन भाव धारण किए अपने तेजोमयी रूप से विराजमान हैं, उनके ही स्वरूप से निकलने वाली अत्यंत प्रकाशमयी किरणों से यह सारा विश्व आलोकित हो रहा है। सारी सृष्टि में गुरुदेव का तेज व्याप्त है।

उन परम दयालु भक्तों पर अकारण करुण कृपा बरसाने वाले गुरुदेव की सर्वव्यापकता का वर्णन न तो आज तक कोई कर पाया और न ही कभी कर पाएगा। प्रेम व दया की साक्षात प्रतिमूर्ति गुरुदेव के पास तो दया व प्रेम का उमड़ता अथाह सागर है जिसका कोई ओर छोर नहीं है। गुरुदेव की महानता सर्वव्यापकता किसी की सुनी सुनाई बातों से ग्राह्य नहीं हो सकती अपितु वह तो आत्मा का विषय है। इसे तो केवल अन्तःकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है। वह तो हमारे स्वयं के अनुभव करने का विषय है। जिसने भी अपने गुरुदेव के इस सर्वव्यापी रूप का दर्शन किया है, इस परमानंद को अनुभूत किया है वह भी वाणी के द्वारा इसका वर्णन नहीं कर सकता क्योंकि वह अद्भुत क्षण अलौकिक दृष्टांत अनिर्वचनीय व अकथनीय है।

वो परमसत्ता अलौकिक परमपुरुष हमारे बीच रहते हैं मगर हम सांसारिक जीव अपनी बुद्धि सीमित होने के कारण उन्हें पहचान नहीं पाते क्योंकि ये अखंड कोटि ब्रह्माण्ड नायक अपने आपको साधारण वेष में छिपाए रहते हैं कोई विरला ही ऐसा भाग्यवान शिष्य होगा जो कि अपने गुरुदेव के अंदर छिपे हुए असाधारण अलौकिक रूप का दर्शन कर सके। क्योंकि गुरुदेव के उस विराट रूप का दर्शन करने के लिए बाह्य चक्षुओं की अपेक्षा अन्तर्चक्षुओं को खोलने की आवश्यकता है। इस पृथ्वी लोक पर समस्त जीव जन्तुओं को माया मोह रूपी तिमिर ने आच्छादित कर रखा है और जब तक गुरुदेव अपने ज्ञान रूपी प्रकाश की तेजोमयी किरणों से इस माया–मोह रूपी तिमिर को नष्ट नहीं करते तब तक हमें वास्तविक सत्य का ज्ञान नहीं हो पाता। जिस प्रकार से प्रातःकालीन बेला में उदित हुआ सूर्य अपनी सुनहरी किरणों से रात्रिकालीन अंधकार को दूर करता है और समस्त जग में उजियारा करता है उसी प्रकार गुरुदेव भी अपने शिष्य के अंदर छिपे हुए अज्ञान रूपी अंधकार को अपनी ज्ञान रूपी किरणों से विदीर्ण कर सद्मार्ग दिखलाते हैं।

परमात्मा क्या है? कैसा रूप है उसका? कहाँ से आए हैं? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न

हमारे हृदय से उद्‌भूत होते हैं इन समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हमें गुरुदेव के सान्निध्य में जाने पर मिलने लगता है। जिस सुख की तलाश में हमने अपने जीवन के अनमोल क्षण गँवाए वो तो वास्तविक सुख है ही नहीं, वास्तविक सुख सच्चा प्रेम तो हमारे गुरुदेव के पास है जिनके पास बैठने मात्र से, जिनके सान्निध्य से हमें सांसारिक जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान होता है। केवल प्रवचन सुनने, चापलूसी करने से काम नहीं बनता अगर हमें उन अविनाशी परमपुरुष के वास्तविक रूप की पहचान करनी है तो उन्हें अपना सर्वस्व न्यौछावर करना है। अपार निष्ठा, श्रद्धा व विश्वास की भावना अपने हृदय के अंदर प्रस्फुटित करनी होगी। उन करुणामयी गुरुदेव के ध्यान में विभोर होने पर जो सुखद अनुभूति होती है उसका वर्णन तो किसी भी प्रकार से नहीं किया जा सकता जिस प्रकार गूँगे व्यक्ति को गुड़ खिलाकर उससे पूछा जाए कि गुड़ का स्वाद कैसा है? तो वो कुछ नहीं बोलेगा बस उसके हाव–भाव ही हम अनुभव कर सकते हैं कि उसे वह गुड़ कैसा लगा?

सच्चा शिष्य जो कि गुरुदेव को अपना माता–पिता, भाई, बन्धु, सखा, मित्र सब कुछ मानता है वह भाँति–भाँति से अपने गुरुदेव को रिझाना चाहता है। कभी वह एक शिशु की भाँति उसके समीप जाकर करुण क्रन्दन करने लगता है या फिर कहें कि जिस प्रकार छोटा बालक अपनी माँ के समीप जाकर इसलिए रोता है कि वो मुझे गोद में उठा ले उसी प्रकार मेरे गुरुदेव भी मुझे अपने हृदय से लगा लें, एक दुलार भरी थपकी मेरे सिर पर फेर दें।

उसके अंदर छिपे उद्‌गार अश्रुकणों के माध्यम से व्यक्त होने लगते हैं। गुरुदेव तो भाव के भूखे हैं। उन्हें साधारण फूलों, मालाओं की आवश्यकता नहीं, फूल अश्रुबिन्दु के चढ़ाओ, उनके स्मरण से वाणी मूक हो जाए, हृदय भाव से इतना भर जाए कि विचार की कोई लहर आनन्द में न उठे अन्तराल आनंद से आपूर हो जाए। सच्ची उपासना में प्रतिज्ञा में रोम–रोम पुकारने लगता है आ जाओ। श्वास–श्वांस में स्वर फूटता है, आकर मिल जाओ। हृदय की हर धड़कन कहती है—अब देर न लगाओ। बस इसी प्रतिज्ञा में अक्रिया की घटना सहज घट जाती है। हमें आभास होता है कि जिन गुरुदेव को हम अपने आप से दूर समझते थे जिनके लिए हम प्रतीक्षारत थे वो तो स्वयं कब से हमारी बाट निहार रहे हैं, कब से बाँह फैलाए हमारे सामने खड़े हैं। बस वो तो इंतजार कर रहे थे कि कब मेरा शिष्य अंदर से खाली होगा वे जान लेते हैं कि अब मेरे शिष्य के अंदर न काम है, न क्रोध है, न लोभ, मोह और न अहंकार है। सांसारिक इच्छाएँ, कामनाएँ समाप्त हो गई हैं। तब हमारे गुरुदेव हमें अपनी शरण में ले लेते हैं। गुरुदेव की कृपा रूपी बरसात अपने शिष्य पर होने लगती है।

गुरुदेव शिष्य को जो मार्ग दिखलाते हैं वह परमगति परम–मोक्ष को दिलवाने वाला होता है। उस पथ का अनुगामी बनने के बाद ही बोध होता है कि जिन संसार के लोगों को भाई–

बन्धुओं, घर–परिवार के सदस्यों को अपना समझते हैं वो सब हमसे बहुत दूरी बनाए हैं। यह शरीर जिसको हम अपना समझकर बैठे हैं वो ही अपना नहीं है तो फिर और कोई क्या हमारा होगा? सद्गुरुदेव के सच्चे साधक भक्त की जीते जी मृत्यु का अनुभव होता है। गुरुदेव अपनी विभिन्न लीलाओं के द्वारा उसे जन्म–मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त कर देते हैं। उस पवित्र मार्ग का अनुगामी बनने पर निर्जन वनों, मन्दिरों में भटकने की आवश्यकता नहीं स्वतः ही हमारे मन मस्तिष्क से माया–मोह हटने लगते हैं। उस श्रेय मार्ग का अनुगामी बनने के पश्चात् पारलौकिक सुख का शाश्वत आनंद उठाते हैं। इसी श्रेय मार्ग को अपनाने का उपदेश गुरुदेव अपने शिष्यों को देते हैं। शिष्यों की वस्तु की उन्हें कोई चाह नहीं होती वो दाता हैं–याचक नहीं। सर्वसमर्थ गुरुदेव के पास तो दया का अपार भण्डार है। वो अपने पापी से पापी शिष्य का भी क्षण भर में उद्धार कर देते हैं।

आवश्यकता है तो बस अपार श्रद्धा व विश्वास की। इस संसार में जब भी किसी ने परमार्थ के मार्ग में प्रगति की है किसी गुरु के मार्गदर्शन में ही की है। अर्जुन ने भगवान कृष्ण से, स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश लिया। मनुष्य को संसार में हर प्रकार की विद्या एवं कुशलता प्राप्त करने के लिए मार्गदर्शक गुरुदेव की आवश्यकता पड़ती है। जैसे एक छोटा बालक बचपन में अपनी माँ से ही चलना सीखता है, उठना–बैठना व व्यवहारिक बातें सीखता है। मनुष्य के जीवन में उसकी पहली गुरु माँ ही होती है। हमारा जीवन एक लहराता हुआ सागर है उसमें गुरु ही जहाज है और गुरु ही जहाज को चलाने वाला कप्तान है। वो ही हमें सांसारिक तूफानों से बाहर निकाल सकते हैं। जिस प्रकार हम जहाज पर सवार होकर यात्रा करना चाहते हैं मगर हम जहाज को चलाना नहीं जानते यदि कोशिश करके उसे चलाना भी चाहें तो ज्ञान के अभाव के कारण विनाश को ही प्राप्त होते हैं। यदि हम उस जहाज को चलाने से पहले उसके विषय में ज्ञान प्राप्त कर लें तो हम उसको भली–भाँति चलाकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं।

इसी प्रकार हमें आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश के लिए भी गुरु की आवश्यकता पड़ती है जो कि हमें परमेश्वर को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। सद्गुरुदेव की आत्मिक प्रेरणा के सहारे ही हम उन्नति कर सकते हैं। गुरुदेव ही वह ज्ञान रूपी दीपक हैं जो हमारे अंतर्मन में छिपे हुए समस्त अज्ञान को नष्ट कर हमें सद्मार्ग दिखाते हैं।

''अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानान्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

गुरुदेव अपने दोनों हाथों से अमूल्य निधि लुटाते हैं वे अपने सभी शिष्यों में समभाव रखते हैं। मगर जो जितना ग्रहण कर सकता है उसे उतना ही मिलता है। गुरुदेव तो सबको

बराबर देते हैं मगर यह तो हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम कितने काबिल हैं। कितना ग्रहण कर सकते हैं। सद्गुरु के हजारों–लाखों शिष्य होते हैं। मगर उनमें से कोई एक ही ऐसा भाग्यवान शिष्य होता है जो गुरुदेव के परम आध्यात्मिक प्रसाद को ग्रहण करता है। यह सब हमारे कर्मों पर निर्भर करता है। हम कितना अपने आप को साधना के मार्ग पर तपा सकते हैं। जो भी भक्त शिष्य अपने गुरुदेव के स्वरूप को चौबीस घण्टे साथ लिए फिरते हैं हमेशा इसी आनंद में मग्न रहते हैं। सोए हों, जागते हों, जंगलों में हों, पहाड़ों में हों, बस्ती में हों, जहाँ कहीं जैसे भी हों वे हमेशा उसी मस्ती में रहते हैं, दुनियाँ की कोई वस्तु उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनका ध्यान इस ओर जाता ही नहीं। वे तो मस्त हुए फिरते हैं, जब वो अपने गुरुदेव के दर्शन करते हैं उनके ध्यान में मग्न रहते हैं तब उन्हें अपने आपका ही होश नहीं रहता। फिर उनको घर–बाहर का क्या होश रहेगा? उनको दुनियाँ की किसी चीज की परवाह नहीं तो दुनियाँ के तानों की क्या परवाह होगी?

घर–बार त्यागने से भगवे–पीले वस्त्र पहनने से कोई वैरागी नहीं बनता। ये तो अपने–आपको ही धोखा देना है। जो अपने गुरुदेव द्वारा बताये मंत्र रूपी रंग में रँग जाते हैं वो गृहस्थी में रहते हुए भी वैरागी हैं, क्योंकि उनका ध्यान तो कर्मरत रहते हुए भी अपने परमपिता की ओर है।

जब तक गुरुदेव की शरण हासिल नहीं करेंगे तब तक कर्मों का यह सिलसिला समाप्त नहीं होगा। इसलिए या तो हम साधना करके मन और माया के दायरे से पार हो जायेंगे या सद्गुरु से प्रेम करके हम मन और माया के दायरे से पार हो जायेंगे। मगर हम जो साधना करते हैं, अभ्यास करते हैं, वह गुरुदेव के प्रेम बिना नहीं हो सकती। यह साधना भी हमारे अन्दर गुरुदेव का प्यार पैदा करती है जितना हमारा आंतरिक विकास होगा उतना ही गुरुदेव से प्रेम बढ़ेगा। उतना ही दुनियाँ से मोह निकलेगा, दुनियाँ से प्यार निकलता जाएगा। परमात्मा और गुरुदेव अभिन्न हैं। इसलिए जितना हम गुरुदेव के नजदीक होते हैं उतना ही हम परमात्मा के दर्शन अपने अंतर में करेंगे। क्योंकि वही परमतत्व हमारे गुरुदेव हैं जिसे हम पहचान नहीं पाए। उन लीलाधारी की महिमा अपरम्पार है जब तक वो हमें अपनी शरण में नहीं लेंगे तब तक हम परमगति परममोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते। अतः हमें गुरुदेव के प्रति सच्चा प्रेम, विश्वास, श्रद्धा अपने अन्दर प्रस्फुटित करनी चाहिए। बड़भागी हैं हम जो हमें गुरुदेव की शरणागति प्राप्त है। यह हमारे पुण्य कर्मों का ही फल है, गुरुदेव के वास्तविक स्वरूप की पहचान कर हमें अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को पहचानना चाहिए।

भगवान से प्रेम होना भक्ति करना वास्तव में एक अद्‌भुत घटना के रूप में सामने आती है। बहुत ही भाग्यशाली होती हैं वे आत्माएँ, वो परमपुरुष जो कि मीरा, नरसी भगत, या फिर

कबीर बनकर सामने आते हैं। मगर एक प्रेम एक भक्ति थोड़ी आसान है और वह है गुरुभक्ति। अपने गुरुदेव से प्रेम! पतंजलिप्रणीता एक तत्त्व के अभ्यास का यह बड़ा सरल और अनुभूत उपाय है। आज हम सबके सामने यही सुपथ है अपने गुरुदेव का ध्यान, उन्हीं का चिन्तन, उन्हीं की वार्ता, उनकी कथा और उन्हीं का काम, उनकी हर आज्ञा का पालन। अगर हम ऐसा करेंगे तो एकत्व का अभ्यास हमारे जीवन में स्वतः ही होने लगेगा और इसके परिणामस्वरूप योग साधनों के विघ्नों का निराकरण भी होता जाता है। बिना गुरु कृपा के योग साधना भी सफल नहीं हो पाती । यह कथन न तो कोरी कल्पना है और न ही किसी तार्किकता का निष्कर्ष। यह तो अनुभूति में सनी–पगी बातें हैं। जिस गति से जो गुरुभक्ति की डगर पर चलेंगे उसी तीव्रता से उनकी साधना में उनके विघ्नों का शमन होने लगेगा, मगर यह सच भी निर्मल चित्त वालों के ही समझ में आ पाता है। क्योंकि जिन्हें तर्क–वितर्क करने की आदत है, जो गुरु शब्द में छिपे गूढ़ अर्थ को नहीं समझ पाते उनके लिए यह सब मिथ्या ही साबित होगा, मगर कोई कितना ही तर्क वितर्क करे, इन शब्दों में अपने–अपने विचार से निष्कर्ष निकालें, मगर हम तो सिर्फ यह जानते हैं कि गुरुदेव ही हमें भव से पार लगा सकते हैं। उनके समान प्यार करने वाला संसार में कोई है ही नहीं। सद्गुरु से बढ़कर हितैषी हमारा कोई हो ही नहीं सकता। हम जैसे जीवों का उद्धार करने के लिए ही तो वो इस पृथ्वीलोक पर अवतरित हुए हैं इससे बड़ी कृपा उनकी और क्या होगी?

अगर हम स्वयं इस मार्ग पर चलकर देखें, गुरुदेव से अपार प्रेम, भक्ति अपने अंदर पैदा करें तो हम स्वयं अनुभव करने लगेंगे कि वो परम दयालु, करुणा के सागर हमारे सारे दुःखों को, संकटों को स्वयं वहन करने लगे हैं। सांसारिक जीवन में अगर हम किसी से कुछ प्राप्त करना चाहें तो हमें बदले में कुछ देना पड़ता है मगर गुरुदेव के दरबार में लेन–देन का सौदा नहीं यहाँ तो बस भाव की, श्रद्धा की बात है कितना हम उनकी आज्ञाओं का पालन करते हैं। हमारे सद्गुरुदेव के दरबार में जाने कितनी अलौकिक घटनाएँ घटित हुई हैं और आज भी हो रही हैं। सद्गुरुदेव अपने परमभक्त शिष्यों की पग–पग पर रक्षा करते हैं। हम सांसारिक जीवों के ऊपर माया रूपी पर्दा पड़ा हुआ है। इसलिए हम अपने गुरुदेव को पहचान नहीं पाते मगर वो सर्वदृष्टा हैं, उनकी हमारे हर कर्मों पर हर गतिविधियों पर नजर है।

अतः हमें अपने गुरुदेव के बताए मार्ग का अनुगामी बनना चाहिए यही हमारे परमकल्याण का मार्ग है–

''सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने
नमः श्री गुरुनाथाय अविद्या ग्रन्थि भेदने:।''

अवतारी महापुरुष या सत्ता की प्राप्ति

श्री जगदीश नारायण उपाध्याय

ज्ञान का अभ्युदय

'योगेन योगो ज्ञातव्यः योगो योगात् प्रवर्तते'।

ज्ञान के अभ्युदय के अनुसार हमारे पहले लेख के प्रश्न के आधार पर गतांक में आपने देखा कि 'प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य' जैसे वैज्ञानिक क्रिया से युक्त राज योग के इस वैज्ञानिक प्रणाली वाला, जीवन मुक्ति अभिलाषी साधक ज्ञान के अनुसार भौतिक जगत को देखते हुए, भावना के अनुसार आध्यात्मिक जगत को देखते हुए, किस प्रकार सरलता पूर्वक, पूर्व जन्मों के संस्कारवश 'अस्मिता' या 'अहं' के रूप में उत्पन्न विचार–जनित ज्ञान को अपने आराध्य को आत्मसमर्पण करके, तथा सहज ज्ञान में बदल कर, अविकसित प्रकाश का कुछ अंशों में ज्ञान, भौतिक स्तर पर महाकाश से होकर, मानसिक स्तर पर चित्ताकाश के भीतर अपने अन्तःकरण में किया।

इस परिणाम का सारा श्रेय योगशास्त्र में उल्लिखित प्राण के खींचने धारण करने 'प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य' जैसे वैज्ञानिक उपाय, साधु संगत के साथ आन्तरिक सत्संग या स्वाध्याय, मन के संयम पर आधारित इस योग प्रणाली द्वारा सहज ज्ञान से युक्त निष्काम भाव से किये हुए साधना, तथा साधक के सीमित व्यक्तिगत चेतना या अहं के साथ, भौतिक, मानसिक स्तर पर चेतन पुरुष के रूप में वीतरागी महापुरुष से स्थापित हो जाने या कुछ अर्थों में भौतिक तथा मानसिक स्तर पर व्यक्तित्व का विकास होने के कारण है।

इस प्रकार की प्रणाली की, साधना के विषय में शास्त्रीय प्रमाण का जहाँ तक प्रश्न है योग वाशिष्ठ के उपशम प्रकरण में इस प्रणाली का वर्णन निम्न शब्दों द्वारा किया गया है।

अध्यात्म विद्याधिगमः साधु सङ्गम एव च।
वासना सम्परित्यागः प्राण स्पन्द निरोधनम्।।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः शान्तिचित्त जयेकिल।। *(92,35,36 का पूर्वार्ध)*

आगे चेतन पुरुष के प्रकाश का बाकी अंशों में क्रियात्मक ज्ञान, अपने सूक्ष्म अन्तःकरण या आध्यात्मिक स्तर पर चित्ताकाश में करना ही, साधक के लिए ज्ञानातीत ज्ञान का विषय है।

वर्तमान युग में संसार के प्रायः अधिकतर प्राणी दुखी क्यों हैं? इसके दूर करने का उपाय क्या है? इस सन्दर्भ में यदि हम विचार करें या देखें तो इसका मूल कारण, पुनर्जन्मवाद पर आधारित राजयोग के इस सिद्धान्त को कि प्रत्येक जीवात्मा अव्यक्त ब्रह्म है, तथा हर प्राणियों के सूक्ष्म अन्तःकरण में उसके भावना के अनुसार चेतन पुरुष के रूप में 'ईश्वर' अवतारी महापुरुष' या 'सत्गुरु' विद्यमान हैं, इसको सत्य न मानने, उसके प्रति यथार्थ मानवतावादी दृष्टिकोण से चिन्तन,

एवं निष्काम भाव से कर्म या सेवा न होने, तथा खास करके देखा जाये तो 'अहंभाव' या 'चेतना' की सीमित व व्यक्तिगत कर देने एवं भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर पर लोगों के व्यक्तित्व का विकास न होने के कारण है।

यदि हम यथार्थ मानवतावादी दृष्टिकोण से देखें या विचार करें तो इसी के चलते सारे संसार में पुरानी मान्यता–नैतिकता मूलक आदर्श (आध्यात्म, धर्म, राजनीति, साहित्य, वाणिज्य, कला, विज्ञान) की शिक्षा–सेवा साधना का स्तर, प्रभाव व मूल्य, गिरता चला जा रहा है। और न उसे न्यायोचित प्रोत्साहन मिल पा रहा है, और न हर क्षेत्र में उसका सही–सही उपयोग हो पा रहा है। उसके स्थान पर नयी मान्यता भौतिकता मूलक आदर्श की शिक्षा, सेवा, साधना का मूल्य प्रभाव, व स्तर बढ़ता चला जा रहा है। समाज में उसी का बोलबाला है, और उसी का हर क्षेत्र में उपयोग हो रहा है। जिसके कारण सम्पूर्ण विश्व में हर स्तर पर हिंसा, तनाव, भय, विषमता व अशान्ति है तथा एक दूसरे के प्रति लोग सशंकित हैं।

बीजगणित की तरह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तों से पूर्व परिचित, हमारे भारत वर्ष के योगाचार्यों द्वारा किये गये निष्काम कर्म पर आधारित, राजयोग की इस प्रणाली के क्रियात्मक ज्ञान द्वारा बड़े आसानी से साधक मन की सूक्ष्म गतियों को अपने अधीन करके दृढ़ व संयत बनाकर अपने कर्मों व विचारों के समन्वय द्वारा, इन सारे दुखों और कष्टों से छुटकारा पा सकता है। तथा अपने ही रूप में रहते हुये चाहे वह किसी वर्ग, जाति या धर्म का साधक हो अपनी भावना के अनुसार अपने व्यक्तित्व का विकास, भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर पर करके जीवन को सफल बना सकता है।

जहाँ तक प्रश्न है? व्यावहारिक ज्ञान कराने न कराने की बात का तो योग दर्शन के अलावा अन्य दर्शन या मनोविज्ञान द्वारा प्रायः यह असम्भव सा है। क्योंकि ये सब मनुष्य के आभ्यान्तरिक भाग या अवचेतन जगत को ही लेकर संलग्न रहते हैं।

अपने लेख में पहले ही मैंने अब तक की सारी उपलब्धियों में से एक कारण साधु सङ्गत के साथ आन्तरिक सत्संग को माना है। साधु सङ्गत तथा आन्तरिक सत्संग की महिमा का गुणगान प्रायः सभी शास्त्रों तथा पूर्वाचार्यों ने एक मत से बताई है। आदि जगत गुरु शंकराचार्य ने इतना तक लिख दिया है कि "क्षण महि सज्जन सङ्गति रेका। भवति भवार्णव तरणे नौका।

साधुओं की एक क्षण भी सङ्गति भवसागर पार होने के लिए नौका स्वरूप है। योग प्रणेता पतंजलि जी ने तो निम्नलिखित सूत्रों द्वारा इसे आत्मिक उत्थान का एक मात्र कारण ही मान लिया है।

वीतराग विषयं वा चित्तम् ।। यो. द. 1–37 ।।

स्वाध्यादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ।। यो.द. 2–45 ।।

बाह्य सत्संग तथा स्वाध्याय में जैसी प्रबल शक्ति है वैसी ही आन्तरिक सत्संग में भी है। आत्म–समर्पण भाव से वीतरागी सत्गुरु या अवतारी महापुरुषों के रूप का ध्यान तथा ॐ मन्त्र के शब्द का बार–बार जप करना और उसके अर्थ का मनन करना ही यहाँ आन्तरिक सत्संग या

स्वाध्याय माना है।

धर्म या अध्यात्म प्रत्यक्षानुभूतियों के अन्तर्गत जीवन से कठोर संघर्ष करते हुए साधक को प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है इसे मानना चाहिए। तथा वीतरागी सत्गुरु या अवतारी महापुरुषों को परमात्मा की उच्चतम् अभिव्यक्तियों के रूप में जानना चाहिए। क्योंकि ये सब किन्हीं विशेष अध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु परमात्मा तो सिद्धान्तों का भी सार–स्वरूप है, चरम सत्य है। यदि परमात्मा को सागर माना जाए, तो इन अवतारी महापुरुषों को लहर मान सकते हैं। इन्हें सदा ही सागर का बोध बना रहता है। हम बुदबुदे मात्र हैं। हम जैसे क्षुद्र जीवों के लिए सागर चेतना जितना समझते हैं उतना आसान नहीं है। अतः हमें लहरों के साथ एकत्व का अनुभव करना चाहिए। तथा विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार अपने व्यष्टि शरीर, व्यष्टि मन और व्यष्टि चेतना को वीतरागी सत्गुरु या अवतारी महापुरुषों के समष्टि शरीर, समष्टि मन और समष्टि चेतना में बदल देना चाहिए फिर लहरों के माध्यम से सागर की अनुभूति करनी चाहिए। बुदबुदे, लहरें और सागर के भिन्न–भिन्न रूप प्रतीय मान होते हैं पर जल की दृष्टि से एक ही रूप हैं।

यदि आगे चमत्कार साधक देखें तो हम सब परमात्मा रूपी अग्नि के ही स्फुल्लिग हैं। अतः साधक को अपनी तुलना प्रकाश–मिश्रित बादल से करनी चाहिए। अहंकारी होने के कारण ही हम बादल के समान हैं और ज्योंही अहंकार को हटाकर परमात्मा के संस्पर्श में आते हैं तो प्रकाश के अनुरूप हैं। परमात्मा हम सबको एक साथ जोड़ने वाला सूत्र है। प्रायः हम इसे भूल जाते हैं और बहुत अहं के केन्द्रित हो जाते हैं। अहंभाव का नाश कर अनन्त सत्ता के अंश के रूप में स्वयं का अनुभव करना ही आध्यात्मिक जीवन है।

'अतीन्द्रिय ब्रह्मसत्ता सर्वानुस्यत' के अनुसार यदि हमने ज्ञान के अनुसार बाह्य जगत में तथा भावना के अनुसार अन्तर जगत में, वीतरागी सत्गुरु या अवतारी महापुरुष को सत्य मान लिया–तो साधक को उस सत्ता के साथ शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपने अन्तःकरण को पहले शुद्ध तथा पवित्र करना होगा। आप जानते हैं कि पवित्र मन ही सत्य का साक्षात्कार कर सकता है। सच्चे और दृढ़ निश्चयी भक्त के सामने भगवान अपना प्रभुत्व प्रकट कर देते हैं। भक्त का काम तो भगवान में मन लगाना है। सत्य को प्राकृतिक, मानुषी नेत्रों से नहीं देखा जा सकता, सत्य तो हम शुद्ध एवं पवित्र मन से ही देख सकते हैं। परम सत्य की अनुभूति तो उन्हीं को हो सकती है, जिन्हें सूक्ष्म दृष्टि प्राप्ति हो, जिनका मन शान्त और एकाग्र हो तथा जिनका चित्त शुद्ध हो।

अतः साधक मानसिक स्तर पर चित्ताकाश के भीतर, मन और चित्त को शान्त, एकाग्र तथा शुद्धतम बनाने, को अपने व्यष्टि शरीर, व्यष्टि मन और व्यष्टि अहंकार को चेतन पुरुष के समष्टि शरीर, समष्टि मन, समष्टि अहंकार से सुसम्बन्ध स्थापित करते हुए ज्ञानातीत ज्ञान प्राप्ति के लिए जब पहले की तरह नित्य नियम से अपने गुरु मन्त्र का जाप तथा चेतन पुरुष के स्थल रूप का चिंतन श्वांस–प्रश्वांस व प्राण के खैचने और धारण करने की क्रिया के साथ, गुरुत्वाकर्षक प्रणाली के अनुसार करता है। तो सत्संग और स्वाध्याय के प्रभाव से कुछ दिनों बाद, श्वांस–प्रश्वांस जो पूर्व जन्म के संस्कार वश पहले ही 'प्राण' का रूप ले चुका है, धीरे–धीरे स्थूल कम्पन का रूप पकड़

लेता है। यही कम्पन स्नायविक गति द्वारा, स्थूल कारण (चित्त या सम्पूर्ण मन) से प्रक्रिया के रूप में (बुद्धि) के पास जाने लगता है। साथ ही साथ रूप भी अपने रजोगुण प्रकृति के अनुसार चलायमान होकर अन्धकारमय सूक्ष्म दिखाई देने लगता है। आगे चलकर इसी प्रकार सतत् अभ्यास करने पर कम्पन मृदु होने लगता है। और 'प्राण' स्थूल कारण (स्थूल चित्त या सम्पूर्ण मन) से प्रक्रिया के रूप में (बुद्धि) से सूक्ष्म कारण (सूक्ष्म चित्त या सूक्ष्म सम्पूर्ण मन) के पास आने–जाने लगता है। इसी प्रकार फिर प्रक्रिया के रूप में (बुद्धि) से निश्चयात्मक बुद्धि या महत् तत्व के पास मृदुतम–कम्पन के रूप में आने जाने लगता है। तथा बुद्धि से प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देता है। इस प्रतिक्रिया के साथ ही साथ रूप भी अपने सतोगुण प्रकृति के अनुसार स्थिर होकर तथा अति अन्धकारमय सूक्ष्मतर बनकर ईथर (आकाश तत्व) के भीतर अपनी तन्मात्रायें बिखेर देता है। तथा ग्रहीता (कारण शरीर–चेतन पुरुष) के साथ, तथा ग्राह्य (कार्य शरीर प्रकृति पुरुष) के साथ, ग्रहण (अस्मिता या अहंकार) के रूप में मिलकर सम्पूर्ण अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है। अन्तःकरण के प्रकाशित हो जाने पर मन वृद्ध व शान्त हो जाता है। संसार के सारे प्रेम सम्बन्धों, आसक्तियों, आकांक्षाओं, सुख–दुःख व भोग से साधक को छुटकारा मिल जाता है। तथा उसे अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार एक तरह से साधक का सम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश हो जाता है। पतंजलि योग दर्शन ने इस आशय की पुष्टि निम्न सूत्रों द्वारा की है।

प्रकाश क्रिया स्थित शीलं भूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गाथ दृश्यम् ।।2–18।।

क्षीण वृत्तरे भिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थद्ज्जनता समापतिः।।।–41।।

इससे पहले हमने अपने पहले लेख 'अन्तर यात्रा का सरलतम् साधन 'आत्म–समर्पण' में वर्णन किया है कि योग दर्शन और सांख्य दर्शन यद्यपि सजातीय दर्शन हैं, परन्तु सांख्य दर्शन चेतन पुरुष के रूप में ईश्वर को आत्म साक्षात्कार का आदि कारण नहीं स्वीकार किया है। ईश्वर के अपेक्षा सांख्य के केवल त्रिगुणमयी प्रकृत का सर्वोच्च प्रकाश महत् या बुद्धितत्त्व–जिसे वे सर्व व्यापी बुद्धितत्त्व कहते हैं। उससे उत्पन्न अहंतत्त्व के सूक्ष्म भूत चैतन्य और उसके अनुलोम परिणाम स्थूल भूत चैतन्य आत्मा को अलग–अलग असंख्य चेतन पुरुष के सत्ता के रूप में आत्म–साक्षात्कार का आदि कारण माना है।

ईश्वर आत्मा आदि जो सब धर्म के प्रति पाद्य सत्य हैं वे बहिरिन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकते, क्योंकि वे आप्त वाक्य पर आधारित हैं। एक ही अवस्था जड़ के समान है, अतः भगवान सोचते नहीं–विचार करते नहीं विचार शून्य हैं। दूसरे की अवस्था चैतन्य की अवस्था है परन्तु उसके आलोक का कम्पन अत्यन्त मृदु होने के कारण दृष्टि गोचर नहीं होता, तथा उसके विचार से अनन्त गुनी और अवस्थायें हैं।

वेद वर्णित भावों के दृष्टा ऋषिगण पर आधारित भारतीय योग दर्शन सांख्य मनोविज्ञान, विज्ञान तथा अन्य धर्मों के सिद्धान्त चैतन्य तथा भूत दोनों से परे जाकर चेतन पुरुष के रूप में ईश्वर या आत्मा के साक्षात्कार की बात करता है। जो अध्यात्मिकतत्त्व, इन्द्रिय अनुभूति, विचार पर आधारित है, ज्ञान के अतीत है तथा ज्ञान स्वरूप आत्मा के आलोक के समान है।

दोनों सिद्धान्तों को सत्य कहा जा सकता है। उसमें जो भेद है वह केवल अपने–अपने मानना के अनुसार सूक्ष्मता और स्थूलता तथा शृंखला या श्रेणी के कारण है। इस शृंखला में यदि हम क–ख को क्रम से लें तो 'क' को प्रथम कहना पड़ेगा, ख–क से शुरु करें तो 'ख' को आदि मानना होगा। अतः हम इसे जिस दृष्टि से देखेंगे, वह उसी प्रकार प्रतीत होगा। चैतन्य अनुलोम–परिणाम को प्राप्त होकर स्थूल भूत का आकार धारण करता है, स्थूल भूत फिर विलोम परिणाम से चैतन्य रूप में परिणत होता है, और इस प्रकार सृष्टि का क्रम चलता रहता है। सांख्य मनोविज्ञान, अन्य धर्मों के आचार्यगण–चैतन्य को प्रथम स्थान देते हैं। उससे वह शृंखला इस प्रकार रूप धारणा करती है पहले चैतन्य पीछे भूत। वैज्ञानिक भूत को पहले लेकर कहते हैं कि पहले भूत पीछे चैतन्य।

अतः इसी शृंखला की श्रेणी में साधक ने पहले सांख्य प्रधान भावना को न मानकर अपने वेद प्रधान भावना विशिष्टा द्वैत सिद्धान्त के अनुसार सूक्ष्म परिणाम भूत चैतन्य पुरुष **'–विदेलीन सत्गुरु'** या **'अवतारी महापुरुष'** श्रद्धा, विश्वास, आत्म–समर्पण के साथ चेतन पुरुष के रूप में आत्म साक्षात्कार का आदीकरण मान लिया है। चेतन पुरुष के रूप में 'विदेह लीन सतगुरु' या 'अवतारी महापुरुष' को मान लेने के कारण ही उसे साधु सङ्गत के साथ आन्तरिक सत्संग या स्वाध्याय की प्राप्ति हुई है। जिसके फलस्वरूप उसे भौतिक स्तर पर महाकाश के भीतर स्थूल विषय की मानसिक स्तर पर चिदाकाश के भीतर सूक्ष्मतर विषय भी समाधिज्ञान की उपलब्ध हुई है।

वर्तमान समय में जो साधक अपने कारण शरीर, स्थूल विषय–भौतिक शरीर, सूक्ष्म विषय–मन या चित्त (पाँचों कर्मइन्द्रियों तथा मन) सूक्ष्म तर विषय–'अविशेष गुण' अस्मिता या अहंकार का सम्बन्ध,–ग्रहीता अवस्था में, सूक्ष्म चैतन्य भूत कारण चेतन पुरुष, क्रियाशक्ति वाले, सत्वगुण सम्पन्न, साधु चेतन पुरुष के साथ जुड़ा हुआ देख रहे हैं। वह इसी वेद वर्णित भावना के अनुसार चेतन पुरुष के रूप में ईश्वर को मानकर, योग के गुरुत्वाकर्षण प्रणाली द्वारा इन्हीं समाधियों का अभ्यास करने, तथा 'प्राण' या 'वायु' तत्त्वों से उत्पन्न सूक्ष्म मन शक्ति के कारण है।

यही परिणाम साधक के दृढ़ता, एकाग्रता, तथा अध्यात्मिक अनुभव ज्ञान का इस समय मूल विषय बन गया है।

सांख्य दर्शन ने माना है कि–सृष्टि के आरम्भिक अवस्था से ही चले आ रहे आत्मा या पुरुष के प्रकृति में, सर्वव्यापी बुद्धि तत्त्व के रूप में निश्चयात्मक बुद्धि के पीछे, स्फुल्लिग के रूप में प्रकाश रहित अवस्था में प्रकृति पुरुष, महत्तत्त्व, या 'वृत्ति' में रहता चला आ रहा है। विशिष्ट साधकों द्वारा यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि–सांख्य ने यदि प्रकृति तथा पुरुष दो सत्तायें मानी हैं तो उसका कोई प्रकृति पुरुष भी होना चाहिए।

उन्हीं सिद्धान्तों तथा उपर्युक्त, पंक्तियों में लिखित नियमों के अनुसार, साधक ने अपने अनुमति ज्ञान की शृंखला की श्रेणी में, आत्मा रूपी चेतन पुरुष के 'क' अलग सत्ता–कारण शरीर–सूक्ष्म चैतन्य भूत पुरुष उसके–मन तथा उसकी बुद्धि को न मानकर। 'ख' अलग सत्ता कार्य शरीर–स्थूल लिंग भूत स्फुल्लिग या 'वृत्ति' उसके बुद्धि तथा निश्चयात्मक बुद्धि, महत्तत्त्व के स्वरूप को विशिष्ट साधकों के माध्यम से तथा अपने पूर्व प्रत्यक्ष अनुभूति के आधार पर मान लिया

है।

सांख्य, न्याय, एवं पूर्व भी मांसा दर्शन के अनुसार विद्या–अविद्या या ज्ञान–अज्ञान आदि वृत्तियाँ मिश्रगुण के रूप में, सृष्टि के प्रत्येक काल में स्थित रही हैं। उन्होंने माना है कि वित्त–सत्व का साम्योन्मुख या वैषम्योन्मुख स्पन्दन की वृत्ति है। साम्य में आकार सम होते हैं और वैषम्य में विषय वामि वृत्तिव्यावृत होने का नाम ही वृत्ति है।

साथ ही साथ उन्होंने यह भी माना है कि देश के किसी आकार को मानकर, धारणा के अनुसार देशाकार–वृत्ति का संकोच ध्यान के द्वारा कलाकार वृत्ति का संकोच करके तथा वृत्ति को साधकर, शरीर के किसी चक्र में वृत्तियों का तदाकार कर देने से, धीरे–धीरे देश की कल्पना सूक्ष्म होकर, लुप्त हो जाती है। वृत्ति का स्थानान्तरण नहीं होता क्योंकि स्थानाकार कल्पना ही नाना रूप धारण करती है। न वृत्ति देश जब अणुदेश में स्थित होती है तो देश का विस्तार लुप्त हो जाता है।

उसी नियम को मानकर साधक! आरम्भ से ही राजयोग के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के अनुसार, सूक्ष्म चैतन्य भूत–कारण चेतन पुरुष क्रिया शक्ति वाले, सत्वगुण सम्पन्न 'सत्‌गुरु' या 'अवतारी महापुरुष' के वस्तु चित्रों के भीतर, गुरु मन्त्रों द्वारा, प्राण के खैचने धारण करने की कृपा के साथ, रूप का ध्यान, साथ ही साथ उसी प्रकार स्थूल लिंग भूत सत्वगुण युक्त साधु प्रकृति पुरुष–महत् तत्त्व या (वृत्ति) का उसके दायरे के भीतर, गुरु मन्त्रों द्वारा प्राण के खैचने धारण करने की क्रिया के साथ धारण, मन और बुद्धि को संयुक्त करके, ईश्वर ज्ञान प्राप्ति के लिए, अनाशक्ति भाव से करता चला आ रहा है।

वेदान्त भावना शिष्टाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादन करने वाले, कारण शरीर रूपी चेतन पुरुष 'ईश्वर' 'अवतारी महापुरुष' या 'सतगुरु' को, साथ ही साथ सांख्य मीमांसा दर्शन का प्रतिपादन करने वाले कार्य शरीर रूपी प्रकृति पुरुष (महत् तत्त्व) या (वृत्ति) को मानकर, योग शास्त्र के अनुसार गुरुत्वाकर्षण प्रणाली द्वारा मन, बुद्धि को संयुक्त करके, उसके दायरे के भीतर अन्तःकरण में ध्यान और धारण, सत्संग के साथ करने से ही, साधक की वृत्तियाँ बहिर्मुखी नहीं हो सकी हैं। तथा इस समय अनुकूल परिस्थितियों वाली हो गई हैं।

उसी के प्रतिक्रिया स्वरूप, पूर्व जन्मों के संस्कार वश, स्थूल परमाणु कम्पन द्वारा सूक्ष्म रूप से, कारण चेतन पुरुष के मानस सरोवर के ऊपरी सतह पर उठा अणुस्वरूप 'अहं' या अव्यक्त भाव उसी प्रकार उसके मृदु कम्पन द्वारा कार्य प्रकृति पुरुष के दर्शनेन्द्रिय स्नायु केन्द्र या मस्तिष्क से उत्पन्न अणुस्वरूप व्यक्त भाव, सत्संगवश इस समय आकाशीय कम्पन द्वारा ऋणात्मक तथा धनात्मक रूप से मिलकर अन्तःकरण के क्रास + चिह्न की भांति ईथर शक्ति की तरह अुण देश में स्थित हो गया है। यह यही 'गुणवत्ता' या 'विशेष गुण0' गुरुत्वाकर्षण प्रणाली द्वरार साम्योन्मुख स्पन्दन से प्राप्त विद्या ज्ञान के कारण है।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

□□□□□□

श्रुति का मंगलकारी संदेश

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।।

श्रेष्ठता प्राप्त करते हुए सब लोग हृदय से एक साथ मिलकर रहो, कभी विलग न होओ। एक-दूसरे को प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी बोझ को खींच ले चलो। परस्पर मृदु सम्भाषण करते हुए चलो और अपने अनुरक्त जनों से सदा मिले हुए रहो।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा